

ॐ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गी जयतः ॐ

स वै पुंसां परी धर्मो यतो भक्तिरचोत्तये ।

धर्मः स्तुष्टिः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

नीष्यादचेदं यदि रतिं भ्रमं पूव हि केवलम् ॥

ॐ भागवत-पत्रिका ॐ

अहेतुक्यप्र तिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।  
भक्ति अधोक्षज की अहेतुकी विष्मरूप अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, भ्रम व्यर्थ सभी, केवल भ्रमणकर ॥

वर्ष ४

गौराब्द ४७३, मास—विष्णु १६, वार—प्रद्युम्न  
मंगलवार, ३१ चैत्र, सम्वत् २०१५, १४ अमृत १६५६

संख्या १०-११

## श्रीमन्नवद्वीप-स्तोत्रम्

[श्रीमद्-रूप-गोस्वामि-विरचितम्]

श्रीगौददेशे सुर-दीर्घिकावास्तीरेऽति-रम्ये इह पुण्यमय्याः ।  
जसन्तमानन्दभरेण नित्यं तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ॥१॥

यस्मै परव्योम वदन्ति केचित् केचित्च गोलोक हृतीरयन्ति ।  
वदन्ति वृन्दावनमेव तज्ज्ञा-स्तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ॥२॥

यः सर्वं दिष्ट स्फुरितैः सुशतैर्-नानाद् मैः सु-पवनेः परितः ।  
श्रीगौर-सम्प्राद्ध-विहार पात्रै-स्तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ॥३॥

श्रीस्वर्णदी यत्र विहारिता च सुवर्ण-सोपान-निवद्ध-तीरा ।  
व्याप्तोर्मिभि-गौरवगाह मध्ये स्तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ॥४॥

महाम्बयनन्ताणि गृहाणि यत्र स्फुरन्ति हैमानि मनोहराणि ।  
प्रत्यालयं यं श्रयते सदा श्री-स्तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ॥५॥

विद्या-दया-ज्ञानि-मन्त्रैः समस्तैः सद्भिर्गुणैर्यत्र जनाः प्रपन्नाः ।  
 संस्तुयमाना ऋषि-देव-सिद्धै-स्तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ॥६॥  
 यस्यान्तरे मिश्र पुरन्दरस्य स्वानन्द गम्भैकपदं निवासाः ।  
 श्रीगौरजन्मादिक-लीलायाव्य-स्तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ॥७॥  
 गौरा भ्रमन् यत्र हरिः स्वभवतैः सङ्कीर्त्तन प्रेमभरेण सर्वम् ।  
 निमज्जयत्युज्ज्वल-भाव-सिन्धौ तं श्रीनवद्वीपमहं स्मरामि ॥८॥  
 पतञ्जवद्वीप विचिन्त्यनाढ्यं पद्याष्टकम् प्रतिमनाः पठेद् यः ।  
 श्रीमच्छचीनन्दन पादपद्मे सुदुर्लभं प्रेममराप्नुयात् सः ॥९॥

### अनुवाद—

श्रीगौड़देशमें पुण्यतोया भागीरथीके मनोहर तटपर निरन्तर आनन्दमें निमग्न होकर विराजमान श्रीनवद्वीप-धामका स्मरण करता हूँ ॥१॥

जिसको कोई-कोई 'परव्योमि' कहते हैं, कोई-कोई 'गोलोक कहते हैं और जिसे तत्त्वविद् पुरुष 'घृन्दावन' जानते हैं, उन श्रीनवद्वीप धामको मैं स्मरण करता हूँ ॥२॥

जो स्थान समस्त दिशाओंको सर्वदा आलोकित करता हुआ, सुखमय सुशीतल समीरसे पूर्ण नाना-प्रकारके सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंसे शुशोभित रह कर श्रीगौरसुन्दरको मध्याह्न-विहारका सुयोग प्रदान करता है, उन श्रीनवद्वीप-धामको मैं स्मरण करता हूँ ॥३॥

जहाँ भागीरथी तरङ्ग-मालाओंमें व्याप्त होकर विहार करती हैं, और जहाँ उनका तट-प्रदेश स्वर्णके सोपानोंसे बँधा हुआ है, उन श्रीनवद्वीप-धामको मैं स्मरण करता हूँ ॥४॥

जहाँ सोनेके असंख्य अति भव्य आवासस्थल विद्यमान हैं और जहाँके प्रत्येक घरमें लक्ष्मीजी

निवास करती हैं, उन श्रीनवद्वीप-धामको मैं स्मरण करता हूँ ॥५॥

जहाँके लोग विद्या, दया, क्षमा, यज्ञ आदि समस्त सद्गुणोंसे विभूषित हैं, ऋषि, देवता और सिद्धजन भी जिनका स्तव करते हैं, उन नवद्वीप-धामको मैं स्मरण करता हूँ ॥६॥

जहाँ पर श्रीगौरसुन्दरकी जन्म आदि लीलाएँ सन्पन्न होती हैं तथा जहाँ स्वानन्द-लभ्य श्रीपुरन्दर मिश्रका गृह वर्त्तमान है, उन श्रीनवद्वीप धामको मैं स्मरण करता हूँ ॥७॥

जहाँ गौरहरि अपने भक्तजनोंके साथ भ्रमण करते-करते प्रेममय संकीर्त्तन द्वारा सबको उज्ज्वल-भाव रूप समुद्रमें निमग्न किये थे, उन नवद्वीप-धामको मैं स्मरण करता हूँ ॥८॥

जो प्रसन्न चित्तसे इस नवद्वीपधामकी सुचिन्ता-पूर्ण पद्याष्टकका पाठ करते हैं, वे श्रीशचीनन्दन गौरहरिके चरणकमलोंमें सुदुर्लभ प्रेम लाभ करते हैं ॥९॥

# संत (सज्जन) के लक्षण

## अकिंचन (६)

### अकिंचनका लक्षण

जो अहंमहोपासनासे दूर रहते हैं, जो कर्म-फल-की कामना नहीं करते और जो भगवान्‌के अतिरिक्त दूररी किसी भी वस्तुकी अभिलाषा नहीं रखते, जो ज्ञान-सम्पत्ति, कर्म-समृद्धि एवं लौकिक सुख आदिको प्राप्त करने की वासना नहीं रखते, वे अकिंचन हैं।

कर्मी, ज्ञानी और त्यागी अकिंचन नहीं हैं।

इस जड़ जगत्‌में जीव प्रायः निर्विशेष-ज्ञान, स्वर्ग आदि सुख-भोग और ऐहिक सुखोंमें मत्त होकर अपनेको धनी अभिमान करता है। वह सर्वदा, मेरा था, मेरा है या मुझे चाहिए इस प्रकार 'कुछ' की खोजमें लगा रहता है। जीव तबतक 'कुछ' के पीछे-पीछे भागता रहता है, जबतक 'कुछ' भी उसका पीछा नहीं छोड़ता। 'कुछ' संगृहीत होते ही जगत्‌के लोग उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगते हैं।

सज्जन कौन हैं ?

जिनको 'कुछ' नहीं है, वे ही अकिंचन हैं, वे ही सज्जन हैं। उन्हें कुछ दूँदना नहीं होता। कुछ था, कुछ है या कुछ रहेगा—इसके लिये उन्हें चिन्ता नहीं होती। सच बात तो यह है कि वह 'कुछ' आश्रय जातीय वस्तु है। जीव स्वयं सुनिर्मल आश्रय जातीय होकर भी अन्यान्य वस्तुओंको आश्रय और अपनेको विषय अर्थात् अपनेको समस्त वस्तुओंका भोक्ता

समझ बैठा है। वह भूल गया है कि भगवान् ही एकमात्र विषय हैं और सभी आश्रय जातीय हैं, अर्थात् भगवान् ही सबके एक मात्र भोक्ता है और सभी उनके योग्य हैं। जीव जबतक इस सत्यकी पुनः उपलब्धि नहीं कर लेता तबतक वह कर्मी या ज्ञानी अथवा अन्यभिलाषी बना रहता है।

भगवान्‌के अनन्य भक्तजन ही अकिंचन हैं। अकिंचन तुल्यसे भी अधिक सुनीच होते हैं अर्थात् वे किसी भी जड़ीय उपाधिको अपनी सम्पत्ति नहीं मानते हैं। वे वृक्षसे अधिक सहिष्णु होते हैं अर्थात् वे किसी भी जड़ीय वस्तुके आक्रमणके योग्य अपनेको नहीं समझते। वे सबको सम्पत्तिमान जानते हैं, वे किसीभी जड़ीय प्रतिष्ठा रूप सम्पत्तिकी कामना नहीं रखते। अतएव भक्तजन ही एकमात्र अकिंचन हैं। वे सर्वत्र कृष्ण-सेवा-परायण होते हैं। उनका किसीके प्रति द्वेषा-द्वेष नहीं होता।

यस्यात्मबुद्धि कुनपे निपातुके  
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यभीः ।  
यत्तीर्थबुद्धिः मलिले न कश्चिद्-  
जनेषु-अभिज्ञेषु स एवं गोखरः ॥

वे श्रीमद्भागवतके उक्त श्लोकका रहस्य उपलब्धि कर अकिंचन या सज्जन हुए हैं। किसी भी अनित्य वस्तुके प्रति उनकी आसक्ति नहीं होती।

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

# भक्तितत्त्वविवेक-तृतीय प्रबन्ध

[ गतांक से आगे ]

## भक्तिका स्वभाव-विवेक

(२) भक्ति स्वभावतः शुभदा होती है। श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं—

शुभानि प्रीनखं सर्व-जगतामनुरक्तता ।

सद्गुणाः सुखमित्यादिन्याख्यातानि मनीषिभिः ॥

सम्पूर्ण जगत्के प्रति प्रीति एवं सम्पूर्णजगत्का अनुराग लाभ, समस्त सद्गुण और सुख आदि कतिपय मंगलमय प्राप्तियोंको पण्डितजन शुभ बतलाते हैं। अब पद्मपुराणमें यह बतलाया गया है कि सम्पूर्ण जगत्के प्रति प्रीति और सम्पूर्ण जगत्का अनुराग लाभका तात्पर्य क्या है?—

येनार्चितो हरिस्तेन तर्पितानि जगन्त्यपि ।

रज्यन्ति जन्तवस्तत्र जङ्गमा स्थावरा अपि ॥

जिन्होंने श्रीहरिका अर्चन किया है, वे समस्त जगत्को तृप्त कर दिया है। स्थावर, जङ्गम समस्त प्रकारके प्राणी उनके प्रति अनुराग करते हैं। तात्पर्य यह कि हरि-भजन परायण व्यक्ति सबके प्रति विद्वेष-रहित निश्चल अनुराग करते हैं, इसलिये दूसरे भी उनके प्रति अनुराग करते हैं।

भक्तोंमें समस्त प्रकारके सद्गुणोंका स्वभावतः ही विकाश होता है। भक्तोंके जीवन-चरित्रसे इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस विषय में श्रीमद्भागवतमें कहा गया है:—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्प्रियकिञ्चना

सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा

मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥

भगवान्के प्रति जिनकी अकिञ्चना भक्ति होती है, उनमें समस्त सद्गुणोंके साथ समस्त देवता निवास करते हैं। असत् मनोरथोंके कारण वहिचि-पयोंके पीछे-पीछे भागनेवाले अभक्त पुरुषोंमें महद्

गुणोंके पाये जानेकी संभावना कहाँ? दया, सत्य, नम्रता, वैराग्य, ज्ञान आदि महद्गुण भक्तिपूत हृदयमें ही उदित होते हैं। विषय-वासनाओंसे पूर्ण हृदयमें ये सब गुण अनेक प्रयत्न करनेपर भी उदय नहीं होते। सुख-प्राप्ति शुभके अन्तर्गत होनेपर भी उसका विवेचन पृथक् किया जा रहा है। भक्ति स्वभावतः सुखदा होती है। श्रीरूप गोस्वामीने लिखा है—

बद्ध जीवके सुख तीन प्रकारके होते हैं। मुक्त जीवोंको वैषयिक सुख नहीं होता। तीन प्रकारके सुख ये हैं—वैषयिक सुख, ब्राह्मसुख, ऐश्वर-सुख। जड़ जगत्में जितने प्रकारके जड़ाश्रित सुख हैं, वे सभी वैषयिक सुख हैं। अष्टादश सिद्धि, स्वर्ग आदि सुख और समस्त प्रकारके ऐहिक सुख ही वैषयिक सुख हैं। व्यतिरेक चेष्टा द्वारा जड़ीयभावको दूर कर विकारहीन ब्रह्ममें अपनी आत्माको ऐक्यरूपमें चिन्तन करते-करते जो निर्विशेष-सुख होता है, उसे ब्राह्म-सुख कहते हैं। सर्वैश्वर्यपूर्ण भगवान्के नित्य आनुगत्य से जो सुख मिलता है, उसे ऐश्वर-सुख कहते हैं। हरिभक्ति स्वभावतः समस्त प्रकारके सुखोंको प्रदान करती है। अवस्था भेद और वासनानुसार वे वैषयिक या ब्राह्म अथवा ऐश्वर समस्त प्रकारके सुखोंको प्रदान कर सकती हैं।

सिद्धयः परमाश्चर्या भुक्तिमुक्तिश्च शाश्वती ।

नित्यञ्च परमानन्दं भवेद्गोविन्द भक्तितः ॥

—(तंत्र)

अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, ईपिता, वशिता, प्राकाम्य, कामवशयिता—ये आठ सिद्धियाँ, समस्त प्रकारके विषय सुख, मुक्ति अर्थात् ब्रह्मसुख एवं नित्य परमानन्द—सब कुछ श्रीगोविन्दकी भक्तिसे प्राप्त होता है। 'हरिभक्तिसुधोदय' में लिखा है—

भूयोऽपि याचे देवेश स्वयि भक्तिर्दास्तु मे ।

या मोक्षान्त-चतुर्वर्ग-फलदा सुखदा तवा ॥

देवेश ! मैं पुनः यह वर माँगता हूँ कि तुम्हारे प्रति अनन्य भक्ति हो । जिस भक्तिके प्रभावसे अपने अधिकारके अनुसार कोई-कोई अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप फलको प्राप्त करते हैं और कोई-कोई प्रेम-सुखको लाभ करते हैं । तात्पर्य यह कि भक्ति समस्त प्रकारके सुखोंको देनेमें समर्थ हैं । परन्तु भक्त-जन समस्त प्रकारके सुखोंको अर्थात् वैषयिक और ब्राह्म सुखों को अत्यन्त तुच्छ मान कर प्रेम-सुखकी ही खोज करते हैं । भक्तिकी सहायता बिना कर्म और ज्ञान कोई भी फल देनेमें असमर्थ हैं । अतएव किसी भी अवस्था या अधिकारमें भक्तिके बिना सुखोदय नहीं हो सकता ।

(३) भक्ति स्वभावतः मोक्षको भी हेय समझती है । नारदपंचरात्रमें कहा गया है—

हरिभक्ति-महादेव्याः सर्वा मुक्त्यादि सिद्धयः ।

भुक्तयस्त्वन् तास्तस्याश्चेटिकावदनुवताः ॥

भुक्ति आदि समस्त प्रकारकी सिद्धियाँ और निखिल अद्भुत भुक्तियाँ परिचारिकाकी तरह हरिभक्ति महादेवीके पीछे-पीछे चलती हैं । श्रीरूप गोस्वामीने भी इसे बड़े ही सुन्दर शब्दोंमें कहा है—

मनोगेव प्ररुढार्था हृदये भगवद्गतौ ।

पुरुषार्थस्तु चत्वारस्तृणायन्ते समन्ततः ॥

अतएव जिस समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपचतुर्वर्ग स्वभावतः अत्यन्त तुच्छ बोध होने लगेगा, तभी शुद्ध भक्तिका उदय स्वीकार किया जायगा ।

(४) हरिभक्ति अत्यन्त ही दुर्लभ है । श्रीरूप-गोस्वामी भक्तिकी सुदुर्लभताके सम्बन्धमें लिखते हैं—

साधनौघैरनासङ्गैरलभ्या सुचिरादपि ।

हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्वात् सुदुर्लभा ॥

हरिभक्ति अत्यन्त ही दुर्लभ है । इसके दो कारण हैं । पहला यह कि बहुत दिनों तक 'आसङ्ग'-शून्य होकर पुंज-पुंज साधन करने पर भी उसे पाया नहीं

जाता । दूसरा कारण यह है कि 'आसङ्ग' युक्त साधन में लगने पर भी श्रीहरि अपनी भक्तिको सहज ही देना नहीं चाहते । 'आसङ्ग'-शब्दका तात्पर्य भजन निपुणतासे है । भजन विषयक निपुणताके अभावमें कोई भी साधन हरिभक्ति प्रदान करनेमें समर्थ नहीं है । भजन निपुणताके साथ बहुत दिनों तक भजन करनेसे नामापराध और वैष्णवापराध दूर होते हैं । पश्चात् भगवत्-कृपासे स्वरूप-ज्ञानमयी पराभक्तिका उदय होता है ।

ज्ञानतः सुलभा मुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञादि पुण्यतः ।

सेयं साधन-साहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्लभा ॥

ज्ञानसे मुक्ति अनायास ही पायी जा सकती है और यज्ञादि पुण्यकर्मोंसे भुक्ति भी सहज ही मिल सकती है; परन्तु सहस्र-सहस्र साधनों द्वारा भी हरिभक्ति सहज ही नहीं पायी जाती ।

भगवान् अपनी भक्तिको सहज ही नहीं देते इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवतके इस श्लोकसे होती है—

राजन् पतिगुरुबलं भवतां यदुनां,

दैवं प्रियः कुलपतिः क्वच किङ्करो वः ।

अस्त्वेवमङ्ग भजतां भगवान् मुकुन्दो

मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम् ॥

राजन ! भगवान् मुकुन्द स्वयं पाण्डव लोगोंके

और यदुवंशियोंके रक्षक गुरु, इष्टदेव, सुहृद, और कुलपति थे, यहाँ तक कि वे कभी-कभी आशाकारी सेवक भी बन जाते थे । यह थोड़े सौभाग्यकी बात नहीं है । क्योंकि भगवान् भजनकारियोंको मुक्ति तो सहज ही दे देते हैं, परन्तु मुक्तिसे भी बढ़कर जो भक्तियोग है, उसे सहजमें नहीं देते । यहाँ जीव-गोस्वामीने लिखा है—“तस्मादासङ्गेनापि कृते साधन भूते साक्षाद्भक्तियोगे सति यावत् फलभूते भक्तियोगे गाढास्पर्शनं जायते तावन्न ददातीत्यर्थः ।” तात्पर्य यह कि जो नवधा भक्तिका अवलम्बन कर भगवद्भजनमें तत्पर हैं, वे जबतक शुद्धस्वरूप-ज्ञानमयी फल भक्तिरूपा रतितत्त्व के प्रति गाढ़े रूपमें आसक्त नहीं होते, तब तक भगवान् उनको शुद्धाभक्ति नहीं प्रदान

करते। उस समय तक अर्थात् गादी आसक्ति होनेके पूर्व तक उनकी भक्ति छायाभक्त्याभासके रूपमें होती है।

(५) भक्ति स्वभावतः सान्द्रानन्द-विशेषात्मा अर्थात् धनीभूत आनन्द है। यह पहले ही कहा गया है कि भगवान् पूर्णसच्चिदानन्द-स्वरूप हैं और जीव उनका किरणस्थानीय अणुचिदानन्द तत्त्व है। अतएव जीवमें भी चित् और आनन्द अल्प परिमाणमें है। आनन्द कङ्कनेसे लोग साधारणतः जड़ सुखको समझते हैं; परन्तु समस्त जड़-सुखोंको एकत्र करने पर भी जो सुख होता है, वह आनन्द-तत्त्वके सामने अत्यन्त तुच्छ होता है। जड़ीय आनन्द अत्यन्त शिथिल और क्षणिक होता है। चिद् आनन्द अर्थात् चिदानन्द धनीभूत आनन्द है। भक्ति वही सान्द्रानन्द अर्थात् धनीभूत आनन्द है। यह जीवका सहजानन्द है। इसके निकट ब्रह्मानन्द भी कुछ नहीं लगता। ब्रह्मानन्द जीवका नित्यानन्द नहीं है, वह तो केवल जड़ विपरीत चिन्तासुख मात्र है। अतएव श्रीरूप गोस्वामीने कहा है—

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत पराङ्ग-गुणीकृतः ।

नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणु तुलामपि ॥

केवलाद्वैतवादी अर्थात् निर्विशेषवादी जिसे ब्रह्मानन्द कहने हैं, उसे कोटीगुणित करने पर जो आनन्द होता है, वह भक्तिमुख-समुद्रकी एक वृन्दके समान भी नहीं होता। तात्पर्य यह कि ब्रह्मानन्दको कल्पनाके द्वारा जितना भी खींचकर लम्बा क्यों न किया जाय, वह जीवके स्वरूपगत आनन्दकी समता तो दूर रहे तनिक सादृश्यता भी प्राप्त नहीं हो सकता। जीवका स्वरूपगत आनन्द सहज वस्तु है, अतएव स्वाभाविक है। ब्रह्मानन्द जीवतत्त्वके विरूपगत चेष्टामे उपन्न होनेके कारण अस्वाभाविक है, अतएव अस्थायी होता है। इसलिए 'हरिभक्ति-सुधोदय'में कहा है—

त्वत्साक्षात्-करणाद्वाद्-विशुद्धादि-स्थितस्य मे ।

सुखानि गोष्पदायन्ते ब्रह्माण्यपि जगद्गुरो ॥

भगवन ! मैं आपका दर्शन प्राप्तकर विशुद्ध आनन्द-समुद्रमें स्थित हो गया हूँ। इस समय जड़ सुखकी तो बात ही क्या, ब्रह्म-सुख आदि मुझे गोष्पद-तुल्य प्रतीत हो रहे हैं। शास्त्रोंमें ऐसे-ऐसे वदुतसे वचन हैं। स्थानाभावके कारण उनको उद्धृत नहीं किया गया।

(६) भक्ति कृष्णको आकर्षण करनेवाली है। जैसे श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं—

कृष्ण हरि प्रेमभाजं प्रियवर्ग-समन्वितं ।

भक्तिवर्शीकरोतीति श्रीकृष्णाकर्षणी मता ॥

शुद्धभक्ति समस्त प्रियजनोंके साथ श्रीकृष्णको प्रेमद्वारा वशीभूत कर लेती हैं, भक्तिदेवीका यही श्रीकृष्णाकर्षणीत्व-धर्म है। तात्पर्य यह कि—साधन अवस्थामें जब तक शुद्धभक्ति उदित नहीं होती, तबतक भक्त्याभास ही कार्य करता है। उस अवस्थामें भक्ति दुर्लभ है। परन्तु साधनदशा होने पर भी जब शुद्धभक्ति उदित होती है, तब कतिपय भजनाङ्गोंका सौन्दर्य विकशित हो पड़ता है। उस समय जीवका सिद्ध-स्वरूपानुभव और भगवत्तत्त्वका सिद्ध-स्वरूपानुभव, ये दोनों उक्त सौन्दर्योंके माध्यमसे प्रदीप्त हो उठते हैं। फल यह होता है कि भक्तिके प्रति चित्तमें आसक्तिरूप गादी व्याकुलता पैदा होती है। इसी प्रकार भजन-दशा उपस्थित होनेपर शुद्ध साधनभक्ति शीघ्र ही रति या भावरूपमें प्रस्कृतित होकर अंतमें प्रेमरूपमें पूर्ण विकशित हो जाती है। भावावस्थामें भक्ति प्रियजनोंके साथ श्रीकृष्णको आकर्षण मात्र करती है, परन्तु प्रेमावस्थामें भक्ति भक्तको श्रीकृष्णलीलाका उपकरण बना कर उसे परम-रसका आस्वादन कराती है। आगे इसका और भी परिष्कृत विवेचन प्रस्तुत किया जायगा। नीचे पाँच श्लोकोंमें विश्ववैष्णवदास इस विषयका विचार दे रहे हैं—

श्लेशणी शुभदा-भक्तिर्यदा सा साधनात्मिका ।

हृदये बद्ध-जीवानां तदस्थ-जङ्गलान्विता ॥१॥

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्लभा ।  
सा भक्तिर्भक्तिरूपेण यावत्तिष्ठति चेतसि ॥२॥  
प्रेमरूपा यदा भक्तिस्तदा तत्तद्गुणान्विता ।  
सान्द्रानन्द-विशेषात्मा श्रीकृष्णार्कदर्शनी च सा ॥३॥  
मुक्तानामैव सा शश्वत् स्वरूपानन्दरूपिणी ।  
सम्बन्ध-स्वरूपा नित्यं राजते जीव-कृष्णयोः ॥४॥  
भक्त्याभासेन या लम्बा मुक्तिर्माया-निकुन्तनी ।  
सा कथं भगवद्भक्तेः साम्यं काञ्चति चेटिका ॥५॥

भक्तिकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—साधन-  
अवस्था, भाव-अवस्था और प्रेम-अवस्था। साधन-  
अवस्थाको प्राप्त भक्तिका स्वभाव दो प्रकारका होता  
है—क्लेशघ्नत्व अर्थात् क्लेशको दूर करनेवाली और  
शुभदत्व अर्थात् परम कल्याणको देनेवाली। भावा-  
वस्थामें भक्तिके चार प्रकारके स्वभाव लक्षित होते  
हैं—(१) क्लेशघ्नत्व ( सब प्रकारके दुखोंका नाश  
करना ), (२) शुभदत्व ( सम्पूर्ण कल्याणको देना ),  
(३) मोक्षलघुता-कारित्व ( मोक्षको भी हेय समझना )

और (४) सुदुर्लभत्व ( दुर्लभ होना )। प्रेमावस्थामें  
भक्तिके उक्त चार स्वभाव तो प्रकाश पाते ही हैं,  
अधिक रूपमें दो स्वभाव और भी लक्षित होते हैं—  
(१) सान्द्रानन्द विशेषत्व ( घन-आनन्दत्व ) और  
(२) श्रीकृष्णार्कदर्पकत्व ( श्रीकृष्णको भी आकर्षण  
करना )। जीव जयतक वृद्धावस्थामें रहता है, तबतक  
भक्तिके स्वरूपगत सान्द्रानन्द-स्वरूपत्व, श्रीकृष्णार्क-  
दर्पकत्व और सुदुर्लभत्व—इन तीन स्वभावोंके साथ  
तीन तटस्थ स्वभाव अर्थात् क्लेशघ्नत्व, शुभदत्व और  
मोक्षलघुता-कारित्व स्वभाव अनुस्युत रहते हैं। मुक्ता-  
वस्थामें जीवकी भक्ति—जीव और कृष्णके बीच  
नित्यसम्बन्धगत—सेवा और स्वरूपानन्द-रूपिणी होकर  
विराजमान होती है। मायाके आवरणका नाश करने-  
वाली मुक्ति भक्त्याभाससे ही प्राप्त हो जाती है। वह  
मुक्ति भक्तिदेवीकी बहुत सी परिचारिकाओंमें एक  
साधारण परिचारिका मात्र है। वह भक्तिदेवी के  
समान होनेकी वासना कैसे कर सकती है ?

—ॐ विष्णुपाद् श्रीमद्भक्तिविनोद् डाकुर

## यशोदानन्दन कृष्ण ही शचीनन्दन गौर हैं

[ पूर्व-प्रकाशित वर्ष ४, संख्या ६, पृष्ठ २०२ से आगे ]

नित्यसिद्ध भगवन् पार्श्वे श्रीकृष्णदास कविराज  
गोस्वामी श्रीचैतन्य-चरितामृतमें लिखते हैं—

यद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्वतनुभा  
य अन्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांशविभवः ।  
षडश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान् स स्वयमयं  
न चैतम्याद् कृष्णः जगति परतत्त्वं परमिह ॥

[ उपनिषद् जिनको अद्वैत-ब्रह्म कहते हैं, वे ब्रह्म  
श्रीगौराङ्गके अङ्गकान्ति हैं। योगशास्त्र जिनको  
अन्तर्यामी पुरुष या परमात्मा बतलाते हैं, वे  
श्रीमन्महाप्रभुके अंश-स्वरूप हैं। शास्त्र जिनको ब्रह्म  
और परमात्माका आश्रय और समस्त अवतारोंके

अंशस्वरूप पदशैश्वर्यपूर्ण भगवान् कहते हैं। वे मेरे  
प्रभु स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग देव ही हैं। अतएव  
श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुसे कोई श्रेष्ठ तत्त्व जगत्में  
नहीं है। ]

'नन्द-सुत बलि यौरे भागवते गाइ ।  
तेह कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसौह ॥  
प्रकाश विशेषे तेह धरे तीन नाम ।  
ब्रह्म, परमात्मा, आर स्वयं भगवान् ॥  
तौंहार अङ्गेर शुद्ध किरण-मण्डल ।  
उपनिषद् कहे तौरे ब्रह्म सुनिर्मल ॥

चर्म-चले देखे यैछे सूर्य निविशेष ।  
 ज्ञान-मार्गे लैते नारे तौहार विशेष ॥  
 कोटी-कोटी ब्रह्मायडे ये ब्रह्मेर विभूति ।  
 सेइ ब्रह्म गोविन्देर हयअङ्गकान्ति ॥  
 अन्तर्यामी यौरे योगशास्त्रे कथ ।  
 सेइ गोविन्देर अंश विभूति ये हय ॥  
 अनन्त स्फटिके यैछे एक सूर्य भासे ।  
 तैछे जीवे गोविन्देर अंश प्रकाशे ॥  
 सेइ त गोविन्द साचान् चैतन्य गोतौइ ।  
 जीव निस्तरिते ऐछे दयालु आर नाइ ॥

( चै. च. आ० २ पच्छिंइ )

श्रीश्रीगौराङ्गदेवके अन्तरङ्ग भक्त श्रील रूप  
 गोस्वामीने 'विदग्धमाधव' के मङ्गलाचरणमें लिखा  
 है—

अनर्पित-चरीं चिरान् करुणयावतीर्णः कलौ  
 समर्पयितुमुज्ज्वल-रसो स्वभक्ति-श्रियम् ।  
 हरिः पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपितः  
 सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इस श्लोककी  
 टीकामें लिखते हैं—वो युष्माकं हृदयरूप-गुहायां  
 शचीनन्दनो हरिः स्फुरतु । यः शचीनन्दनः कलौ  
 स्वभक्ति-श्रियं स्वभजन सम्पत्ति करुणया समर्पयितुं  
 अवतीर्णः । कथम्भूतां ? अनर्पित-चरीं केनापि न  
 अर्पित पूर्वा । ननु कपिलदेवादिभिः स्वमात्रादिभ्यो  
 भगवद्भजनं किं नोपदिष्टं ? तत्राह सकल-रस-  
 सद्भावेऽपि उन्नत-उज्ज्वल-रसो यस्यां तां भक्तिश्रियं ।  
 तथा उज्ज्वलरस-प्रधाना भक्तिर्नोपदिष्टेति भावः ।  
 ( शचीनन्दनः ) कथम्भूतः ? पुरटान् सुवर्णादपि  
 सुन्दर-द्युति समूहेन सन्दीपितः । एवं सति पर्वतकन्दरायां  
 उदितः सिंहो यथा तत्रस्थान् हस्तिनो नाशयति, तथा  
 युष्माकं हृदय-कन्दरायां उदितः शचीनन्दन-स्वरूप-  
 सिंहो हृद्रोगरूप हस्तिनो नाशयतु इति ध्वनिः ।

—किसी भी युगमें किसी भी अवतार द्वारा जो  
 वस्तु कभी भी प्रदान नहीं की गयी, उस उन्नत-  
 उज्ज्वल-रस ( मधुर-रस ) से युक्त अपनी भजन-

सम्पत्ति रूप भक्तिको दान करनेके लिये जो कलियुग-  
 में अवतीर्ण हुए हैं, जिनकी अङ्गकान्ति स्वर्ण-की  
 कान्तिको भी मान करती है, वे शचीनन्दन रूप सिंह  
 तुमलोगोंके हृदय-कन्दराओंमें विराजमान होकर तुम-  
 लोगोंके हृदय-रोग रूप हाथियोंका विनाश करें ।

प्रत्येक द्वार युगमें नन्दनन्दन श्रीकृष्ण पृथ्वीपर  
 अवतीर्ण नहीं होते । ब्रह्माके एक दिनमें वे केवल  
 एकवार विश्वमें आविर्भूत होते हैं । सत्य, त्रेता,  
 द्वापर और कलि—ये चारों युग मिलकर एक दिव्य  
 युग बनते हैं । ४, ३२,००० वर्षका कलियुग होता है ।  
 कलियुगके दुगना द्वापर, द्वापरसे दुगना त्रेता और त्रेता  
 से दुगना सत्ययुग होता है । इस प्रकार ७१ चतुर्युग  
 एक साथ मिलाकर एक मन्वन्तर होता है । १४मन्वन्तर-  
 में ब्रह्माका एक दिन होता है । ब्रह्माके एक दिनके  
 अन्दर वैवस्वत-नामक सातवें मन्वन्तरके २८ वें  
 चतुर्युगके द्वापरके अन्तिमचरणमें श्रीकृष्ण जगत्में  
 आविर्भूत होते हैं ।

आसन् वर्णास्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥

( श्रीमद्भाग० १०।८।१३ )

इस श्लोकके अनुसार द्वापर और कलियुगमें  
 श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीगौराङ्गदेव आविर्भूत होते हैं,  
 सत्य है; परन्तु सभी द्वारोंमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण  
 और सभी कलियुगोंमें स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्गदेव  
 आविर्भूत नहीं होते । श्वेतवराह कल्प, वैवस्वत  
 मन्वन्तरके २८ वें चतुर्युगके द्वापरके अन्तमें ही  
 श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण होते हैं । जिस द्वारमें  
 श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण होते हैं, ठीक उसी द्वारके  
 अन्तसे प्रारम्भ होने वाले कलियुगमें ही श्रीगौराङ्गदेव  
 आविर्भूत होते हैं ।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहते हैं—

स्वयं भगवान् कृष्ण ब्रजेन्द्र कुमार ।

गोलोके बजेर सह नित्य विहार ॥

ब्रह्माएक दिने तिहो एक वार ।

अवतीर्ण इशा करेन प्रकट विहार ॥

सत्य-त्रेता-द्वापर कलि चारियुग जानि ।  
 सेइ चारियुगे दिव्य एक युग मानि ॥  
 एकात्तर चतुर्गुणे एक मन्वन्तर ।  
 चौद मन्वन्तर ब्रह्मर दिवस भीतर ॥  
 वैवस्वत-नाम एइ सप्तम मन्वन्तर ।  
 सत्ताइश चतुर्गुग गेले ताहार अन्तर ॥  
 अष्टाविंश चतुर्गुणे द्वापरेर शेषे ।  
 बजेर सहित हय कृष्णेर प्रकाशे ॥

भक्त्यपुराणमें भी कहते हैं—

अस्माद्ग्रथान्तरात् कल्पात्रयोविंशतिमो यदा ।  
 वाराहो भविता कल्पस्तस्मिन् मन्वन्तरे शुभे ॥  
 वैवस्वताख्ये सप्तमो मस्ये मस्यलोकएव ।  
 द्वापराख्ये युगं तस्मिन्नष्टाविंशतिमं यदा ॥  
 तस्यान्ते च महानीलो वासुदेवो जनार्दनः ।  
 भारावतरकार्यन्तु त्रिधा विष्णुर्भविष्यति ॥  
 द्वैपायनो मुनिस्तद्वद रौहिणेयोऽथ केशवः ॥

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और उनसे अभिन्न श्रीगौरांगदेव केवल युगावतार ही नहीं हैं, वे समस्त अवतारोंके मूल अवतारी—अंशो भगवान् हैं। "एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं"— (श्रीमद्भागवत १।३।२८)—श्रीमद्भागवतका श्लोक इसका प्रमाण है। युगावतारके सम्बन्धमें श्रीलक्ष्मण गोस्वामीने संक्षेप-भागवतामृत गन्धके पूर्व खण्ड १०१ श्लोकमें कहा है—

कथ्यते वर्णनामाभ्यां शुक्लः सत्ययुगे हरिः ।

रक्तः श्यामः क्रमात् कृष्णश्चैतायां द्वापरे कलौ ।

उक्त श्लोककी टीकामें भगवान् पार्षद श्रीवलदेव विश्वाभूषणने कहा है—'कलौ कृष्ण इति सामान्यतः सर्वेषु कलिपुः "कृष्ण कलियुगे विभुः" इति हरिवंशान् । यस्मिन् कलौ स्वर्णगौरः कृष्णचैतन्यः स्यात्, तदा कृष्णः स तत्रान्तर्भवेदिति बोध्यम् ।

इस विषयमें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीठाकुरने भी श्रीमद्भागवतके १०।३।२८ श्लोककी टीकामें लिखा है—

वैवस्वत-मन्वन्तर-गताष्टाविंश-चतुर्गुणीय-द्वापर-कलियुगयोः स्थयमवतारी कृष्णः पीतश्च प्रादुर्भवति,

तद्युगद्वयावतारौ श्याम-कृष्णौ तदा तत्रैवान्तर्भूतौ तिष्ठतः ।

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुगमें श्रीहरि क्रमशः शुक्ल, रक्त, श्याम और कृष्ण नाम और रंग धारण करके अर्थात् सत्ययुगमें शुक्ल नामा शुक्ल अङ्गकान्ति, त्रेतायुगमें रक्तनाम और रक्त अङ्गकान्ति, द्वापरमें श्यामनाम और श्याम अङ्गकान्ति तथा कलियुगमें कृष्णनाम और कृष्ण अङ्गकान्ति धारण कर जगत्में अवतीर्ण हुआ करते हैं। किन्तु वैवस्वत-मन्वन्तरके २८ वें चतुर्गुणके द्वापरमें स्वयं कृष्ण ही अवतीर्ण होते हैं। उस समय युगावतार श्याम उनके अन्तर्भूत होते हैं। उसके बादवाले कलियुगमें श्रीगौराङ्गदेव जब आविर्भूत होते हैं, तब युगावतार कृष्ण गौराङ्गदेवमें प्रवेश कर जाते हैं।

श्रीश्रीगौरकृष्णके नित्य पार्षद श्रीरघुनाथदास गोस्वामीने स्तवावली नामक ग्रन्थकी मन्ःशिखामें धतलाया है—

न धर्मं नाधर्मं श्रुत्वा निरुक्तं किञ्च क्व

प्रेजे राधाकृष्ण-प्रसुर-परिचर्यामिह तनु ।

शचांसुतुं नन्दीश्वरपति-सुमन्वे गुरुवरं

मुकुन्द प्रेष्ठस्त्वे स्मर परमजस्रं ननु मनः ॥

हे मन ! तुम न तो वेद-विहित-धर्मका अनुष्ठान करो और न वेद-विरुद्ध अधर्मका आचरण ही। बल्कि ब्रजमें वासकर श्रीश्रीराधाकृष्णकी खूब प्रेमसे सेवा करो एवं श्रीशचीनन्दन गौरहरिको साक्षात् श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण तथा श्रीगुरुदेवको श्रीकृष्णका अत्यन्त प्रियजन जानकर प्रीतिपूर्वक निरन्तर स्मरण करो।

श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं और गौरांगदेव ही श्रीकृष्ण हैं श्रीकृष्ण और श्रीगौरांगदेव पृथक्-तन्त्र नहीं हैं दोनोंही मधुर रसके आश्रय हैं। दोनोंमें एक विशेषता यह है कि श्रीकृष्ण माधुर्य-विग्रह हैं और श्रीगौरांग औदार्य-विग्रह हैं। जहाँ माधुर्यकी प्रधानता होती है, वह श्रीकृष्ण-स्वरूप होता है और जहाँ औदार्यकी प्रधानता होती है, वह गौराङ्ग-स्वरूप होता है। दूसरी विशेषता

यह है कि श्रीकृष्ण संभोगमय विग्रह हैं और श्रीगौर-सुन्दर विप्रलम्ब-विग्रह हैं। गौर ही संभोगमयी लीला में कृष्ण हैं और कृष्ण ही विप्रलम्बमयी लीला में गौर हैं। गौर-कृष्ण अभिन्न होने पर भी गौरलीला और कृष्णलीला में नित्य वैशिष्ट्य वर्त्तमान है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जैवधर्म में लिखते हैं—

गौरलीला और कृष्णलीला—ये दोनों ही लीलाएँ नित्य हैं। मूलवृन्दावन में कृष्णपीठ और गौरपीठ—दो पृथक्-पृथक् प्रकोष्ठ हैं। कृष्णपीठ में जो सच नित्यसिद्ध और नित्यमुक्त पार्षद माधुर्य-प्रधान औदार्य भाव प्राप्त होते हैं, वे कृष्णगण हैं; गौरपीठ में वे नित्यमुक्त पार्षद ही औदार्य-प्रधान माधुर्य भोग करते हैं। किसी-किसी क्षेत्र में कोई-कोई पार्षद स्वरूप व्यूहके द्वारा दोनों ही पीठों में वर्त्तमान रहते हैं। पुनः कोई-कोई एक ही स्वरूप में एक ही पीठ में वर्त्तमान रहते हैं, दूसरे पीठ में नहीं। जो साधनकाल में केवल गौर उपासक होते हैं, वे सिद्धकाल में केवल गौरपीठ में सेवा करते हैं; जो साधनकाल में केवल कृष्ण-उपासक होते हैं, वे सिद्धकाल में कृष्णपीठ में सेवा करते हैं और जो साधनकाल में कृष्ण-गौर दोनों स्वरूपोंके उपासक होते हैं, सिद्धकाल में वे दो शरीर धारण कर दोनों ही पीठों में एक ही समय वर्त्तमान रहते हैं—यही गौर-कृष्णके अचिन्त्य-भेदा-भेदका परम रहस्य है। —(जैव-धर्म)

श्रीगौराङ्गदेव राधाकृष्ण-मिलित विग्रह हैं।

श्रीमती राधिकाजी कृष्ण-प्रेमकी मुक्तिमान विग्रह हैं। वे श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीमती राधिकाके समान कृष्णको प्राणोंसे भी प्रिय और कोई नहीं है। श्रीकृष्ण भुवनमोहन हैं, किन्तु भुवन-मोहन कृष्ण भी भुवनमोहन-मोहिनी श्रीराधाजीके प्रेमके नित्य अधीन हैं। श्रीमती राधा कृष्णकी सेवा कर जो परम-सुख अनुभव करती हैं, उसे अनुभव करनेके लिये श्रीराधा का भाव और उनकी कान्ति ग्रहण कर स्वयं श्रीकृष्ण चैतन्य-रूप धारण करते हैं। श्रीमती राधिकाका कृष्णके प्रति कैसा प्रणय है? श्रीकृष्णकी अत्यद्भुत मधुरिमा—जो श्रीराधाजी आस्वादन करती हैं, कैसी होती है और श्रीकृष्णकी मधुरिमाकी अनुभूतिसे श्रीमती राधिकाको किस प्रकारका सुख होता है—इन तीन विषयोंका आस्वादन करनेके लोभसे श्रीकृष्ण शचीदेवीके गर्भसे गौराङ्ग रूप में आविर्भूत होते हैं। यही गौर अवतारके मुख्य कारण हैं। पृथ्वीका भार हरण करना, धर्मकी स्थापना करना तथा नाम-प्रचार करना—यह सब श्रीगौरावतारका मुख्य कारण नहीं—गौण कारण हैं।

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशी वानवैवा-  
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशी वा मदीयः।  
सौख्यस्वास्या मदनुभवतः कीदृशं वेतिकोना-  
सद्भावाब्जः समञ्जसि शची गर्भसिन्धौ हरीभुः॥

(चं० च० आ० ४।२३०)

—त्रिद्विड स्वामी श्रीमदभक्तिमयुक्त भागवत महाराज

## मुनियोंका मतिभ्रम

[ पूर्व-प्रकाशित वर्ष ४, संख्या ६, पृष्ठ १३० से आगे ]

( डा० राधाकृष्णन् द्वारा सम्पादित अंग्रेजी गीता-भाष्यकी समालोचना )

भगवान्के अंश दो प्रकारके होते हैं। एक स्वांश और दूसरा विभिन्नांश। श्रीकृष्ण अपने स्वांश वैभव द्वारा विष्णु-तत्त्व या अनन्त करोड़ विष्णु अवतारोंको प्रकट करते हैं। तथा विभिन्नांश द्वारा अनन्त करोड़ जीवोंको प्रकट करते हैं। सारे विष्णु-तत्त्व ही भग-

वान् हैं; परन्तु जीव-तत्त्व भगवान् नहीं है। जीव भगवान् की तटस्था-शक्तिगत तत्त्व है। जीव-तत्त्व सनातन तत्त्व है अर्थात् जीव नित्यकाल भगवत् शक्ति-तत्त्व हैं, थे और रहेंगे। वे कभी भी भगवन् तत्त्व या विष्णु-तत्त्व नहीं हो सकते।

श्रीमद्भगवद्गीताका यही सिद्धान्त है। यह विभिन्नांश जीव-तत्त्व विष्णु-तत्त्वका लुप्त अंश असु-चेतन्य मात्र है। जैसे, विराट् आगकी छोटी-छोटी चित्त-गारियाँ। अंश कभी भी न तो पूर्णता लाभ कर सकता है और न पूर्ण के बराबर ही हो सकता है। पूर्ण और उसके अंशको एक मानना किसी प्रकार भी युक्तिपूर्ण शास्त्र-सङ्गत नहीं है। मायावादी दोनोंको एक मानते हैं। इनका ऐसा मत एक दुःखत मात्र है—श्रीमद्भगवत् का यही सिद्धान्त है। भगवान्का विभिन्नांश-तत्त्व जीव ब्रह्मदशा दूर होने पर अपने शुद्ध स्वरूपसे भगवान्की आनन्द-चिन्मय-रस रूप नित्य लीलामें प्रवेश कर नित्यकाल भगवत् सेवा-सुख अनुभव करता है। इस सेवा-सुखकी तुलनामें भूठी सायुज्य-मुक्ति अर्थात् कल्पित ब्रह्मानन्द सुखका वही स्थान है जो स्थान विराट् समुद्रकी तुलनामें एक बूँद जलका होता है। हानियोंकी कल्पित सायुज्य-मुक्ति सर्वथा असम्भव व्यापार होनेके कारण भक्त-जन उसके लिये कभी भी प्रार्थना नहीं करते। माया-वादियोंकी इस सायुज्य मुक्तिका अर्थ है—जीवकी लुप्त चेतनताकी विचित्रताको नष्ट कर देना अथवा Spiritual Suicide करना। डा० राधाकृष्णनने ब्राह्मणिके सम्बन्धमें जो वचन उद्धार किये हैं, उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

“The doctrine of the incarnation agitated the Christian World a great deal. Arioës maintained that the son is not the equal of the Father but created by Him. The view that they are not distinct but only different aspects of one Being is the Theory of Sabellues. The former emphasised the difference of the Father and the Son and the latter then in onenes. The view that finally provided was that the father and the son were equal and of the

same substance. They were however distinct persons”

— इन पंक्तियोंमें अचिन्त्यभेदाभेदका विचार अस्पष्टरूपमें व्यक्त है—इसे हम मानते हैं। Son of God शिशु प्रभु भगवान्के विभिन्नांश जीव-तत्त्व होने पर भी Substantially अर्थात् वस्तु-तत्त्वके विचारसे ‘चित्’ अर्थात् एक ही वस्तु है; परन्तु पिता और पुत्रकी तुलनामें जीव तत्त्व और भगवत्-तत्त्व कदापि एक नहीं हैं। हम उन दोनोंको अलग-अलग व्यक्ति मानते हैं। जिस प्रकार जीव तत्त्वका व्यक्तित्व है, उसी प्रकार भगवान्का भी अत्यन्त उपादेय और पूर्ण व्यक्तित्व है। उनको निराकार निविशेष माननेसे पूर्णताकी हानि होती है। ब्रह्म-संहितामें भगवान्के पूर्ण व्यक्तित्वका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

रामादि मूर्त्तिषु कला-नियमेन तिष्ठन्  
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।  
कृष्णः स्वयं समभधत् परमः पुमान् वो  
गोविन्दमादिपुरुषं त्वमहं भजामि ॥

राम, नृसिंह, वराह आदि अनन्त कोटि विष्णु तत्त्व सभी भगवान् हैं, परन्तु उनमेंसे सभी अंश या अंशके अंश, कलाके रूपमें नित्यकाल वर्तमान हैं। उन सबमें तत्त्वकी दृष्टिसे पूर्णता है। वे सभी किसीके भी आधीन नहीं हैं। किसीके कहनेसे वे निराकार या निविशेष नहीं हो जायेंगे। वे नित्यकाल हैं और समय उपस्थित होने पर सूर्यकी भाँति अपने नित्यस्वरूपमें उदित होते हैं अथवा छिप जाते हैं। उदित रहनेको ‘प्रकट लीला’ और छिप जाने अर्थात् हमारी दृष्टिसे बाहर होने का नाम ‘अप्रकट लीला’ है। वे पहले नहीं थे, परन्तु भक्तकी इच्छासे शरीर धारण किये—ऐसी बात मूर्ख लोग ही कहा करते हैं—यह गीताका सिद्धान्त है। ब्रह्मसंहिताके उपरोक्त श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णको परमपुरुष बतलाया गया है। अर्थात् गोविन्द ही आदि पुरुष हैं और दूसरे-दूसरे विष्णु-तत्त्वसमूह उनके अंश या कला हैं। स्मरण रहे कि कोई भी भगवत्-विग्रह

जीवकी श्रेणीमें नहीं है। श्रीमद्भागवतमें भी इसी विचारकी पुष्टि करते हुए व्यासदेव ने “एते चांश-कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्”—इसीको सिद्धान्त स्थिर किया है। “श्रीकृष्णः स्वयं समभवत्” का अर्थ यह है कि अवतारगण तो आते ही हैं, स्वयं भगवान् कृष्ण भी अवतारी और अवतारकी तरह आते हैं। इन बातोंको केवल भगवद्भक्तजन ही भगवान्की कृपासे समझनेमें समर्थ होते हैं। इसे विद्या या टीका-टिप्पणी द्वारा समझा नहीं जा सकता।

अस्तु, सिद्धान्त यह हुआ कि डा० राधाकृष्णन्ने भगवान् श्रीकृष्णको जो साधारण मानव या अति मानव ठहराया है, वह सर्वथा भूल है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् परात्पर तत्त्व हैं, अद्वय-ज्ञान तत्त्व हैं और हैं पूर्ण तत्त्व। वे निराकार या निर्विशेष नहीं हैं, बल्कि अप्राकृत आदि पुरुष हैं और हैं सच्चिदानन्द-नित्य-विग्रह।

श्रीकृष्ण ही आदि पुरुष परमब्रह्म नित्य-शाश्वत-विग्रह हैं—यह तथ्य तो गीतामें ही अर्जुन द्वारा स्वीकृत है। श्रीकृष्णका सुन्दर व्यक्तित्व देवता तक भी जाननेमें असमर्थ होते हैं। फिर डा० राधाकृष्णन उस व्यक्तित्वको कैसे समझ सकते हैं? आदिपुरुषका अर्थ है—समस्त पुरुषावतारोंका अवतारी। वेदोंमें जो ‘पुरुषसूक्त’ कहे गये हैं, वे कारणोदशाथी पुरुषावतारोंके सम्बन्धमें ही कहे गये हैं। भगवान् श्रीकृष्ण उन पुरुषावतारके भी आदि पुरुष हैं अर्थात् पुरुषावतारगण भी श्रीकृष्णके अंश या कला मात्र हैं। ब्रह्मसंहितामें इसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है। इसलिये डा० राधाकृष्णन्ने जिस तत्त्वको eternal beginning Less स्थिर किये हैं, वे eternal तत्त्व ही श्रीकृष्ण हैं। परन्तु डा० राधाकृष्णन इसे समझ नहीं सके हैं।

श्रीकृष्ण ही आदि पुरुष हैं—इसे अर्जुनने तो स्वीकार किया ही है, अधिकन्तु दूसरे दूसरे प्रधान-प्रधान मुनियों और ऋषियोंने भी जैसे—व्यासदेव, नारद, देवल, असित, आदि सबने ही एक स्वरसे इसे स्वीकार किये हैं। प्राचीनसे प्राचीन समस्त महाजनों-

ने, आचार्योंने और ऋषियोंने भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् माना है; आज भी विश्वके करोड़ों-करोड़ों मनुष्य श्रीकृष्णको भगवान् स्वीकार करते हैं, तथापि डा० राधाकृष्णन् जैसे एक प्रख्यात् विद्वान् उनको स्वयं भगवान् माननेमें हिचकते क्यों हैं?—इस प्रश्नका उत्तर दिये हैं श्रीआलबन्दारु यामुन,चार्य जी। वे स्तोत्ररत्नमें लिखते हैं—

एषां शीलरूपधरितैः परमप्रकटैः,  
यत्वेन सात्त्विकतया प्रवक्ष्येऽथ शास्त्रैः।  
प्रख्यात् देव-परमार्थविदां मतेश्च,  
नैवासुर-प्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ॥

—हे भगवान्! तुम्हारे अवतार-तत्त्वको जानने वाले तथा परमार्थके विशेषज्ञ व्यास आदि ऋषि वर्ग प्रबल सात्त्विक शास्त्रों द्वारा तुम्हारे शील, रूप, धरित्र और परम सात्त्विक भावोंको लक्ष्य कर तुम्हें जान सकते हैं, परन्तु राजस और तामस गुणोंसे युक्त असुर स्वभाववाले जीव तुम्हको जाननेमें समर्थ नहीं होते।

बड़े-बड़े विद्वान् ऐसी-ऐसी भूलें करते हैं। इसी लिये भगवान्ने श्रीगीतामें ही गीता-पाठ या गीता जाननेके लिये परम्पराका विचार दिया है। जो लोग परम्परा स्वीकार न कर अपने स्वकपोलकल्पित अर्थोंसे गीता पढ़ने या समझनेकी चेष्टा करते हैं उनके स्वर्थ परिभ्रमको लक्ष्य कर हम एक ही साथ दुःखी होते हैं तथा हँसते भी हैं।

गीताके चौथे अध्यायमें हम स्पष्ट ही देखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णने इस परम्पराका पुनरुद्धार करनेके लिये ही कुरुक्षेत्रमें करोड़ों-करोड़ों वर्षोंके पश्चान् पुनः कर्म, ज्ञान और भक्तियोगकी बातें विस्तारसे बतलायी थी। भगवद्गीता कोई नयी पद्धतिका दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है। जैसे भगवान् नित्यकाल आदिपुरुष रूपमें वर्तमान हैं, वैसे ही गीता भी भगवान्को वाणीरूपमें नित्यकाल विराजमान है। जैसे भगवान् नित्यकाल नवयौवन सम्पन्न हैं, वैसे ही उनकी अमृतवाणी भी नित्य नवीन और चर अफुरन्तु नवीनतासे पूर्ण है। अपनी इच्छाके

अनुसार सभी गीताका नया-नया अर्थ बाहर कर सकते हैं और उस अर्थके द्वारा अपनी जड़ विद्याका पौशल दिखला सकते हैं, सन्देह नहीं, परन्तु वह सब कुछ मायाका ही वैभव है। उससे गीताका यथार्थ अर्थ सिद्ध नहीं हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीताका अर्थ तो एकमात्र भगवत्-परम्परा द्वारा ही जाना जा सकता है। गीताका मुख्य अर्थ सात्वत् सम्प्रदाय स्वीकार करने हैं और गीता अर्थ वाणीविलासमें चतुर जड़-विद्या विशारदोंको अर्भीष्ट होता है।

केवल वाक् चतुरताका विस्तार करनेवाले परम्परा-शून्य विपथगामी व्यक्तियोंको गीताके सम्बन्धमें यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेके लिये नीचे संक्षेपमें परम्पराके अनुसार गीताका तात्पर्य दिया जा रहा है।

१. समस्त कारणोंके कारण परमतत्त्व वाक् भगवत्तत्त्व ही 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्रके प्रतिपाद्य विषय हैं। वे ही अनन्त कोटि विचित्रतापूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड और वैकुण्ठ आदिके मूल केन्द्र हैं। वे शाश्वत पुरुष, अप्राकृत पुरुषोत्तम और सविशेष तत्त्व हैं। निर्विशेष ब्रह्म-तत्त्व—उनकी अङ्गज्योति या प्रभा मात्र है एवं परमात्मा उनके अंश हैं तथा वे अनन्त जीवों तथा ब्रह्माण्डोंके अन्तर्निामी पुरुष हैं।

२. जीव उनके चित्-करण अंश विशेष हैं, जो संख्यामें अनन्त हैं। वे जीव चिद्-अंशकी दृष्टिसे भगवान्के साथ एक होने पर भी अंश और अंशीकी दृष्टिसे नित्य पृथक् भी हैं। इसलिये वे भगवान्के सहित आचिन्य-भेदाभेद तत्त्व हैं अर्थात् उनकी तटस्था शक्ति हैं।

३. तटस्था शक्तिगत अणुचैतन्य जीव एक ओर वैकुण्ठादि धाममें तथा दूसरी ओर जड़ विश्व-ब्रह्माण्डमें—दोनों तरफ धाम कर सकता है। अनादि कर्मफलसे वह भवसागरमें गिर जाता है और पुनः-पुनः जन्म-मरणके चक्करमें फँसकर त्रितापादि दुःख भोग करता है।

४. बद्धजीव जड़-सम्पत्तिरूपा प्रकृतिमें फँसे हुए हैं। उस प्रकृतिका धर्म है—सृष्टि, स्थिति और प्रलय।

सृष्टि और स्थितिमें प्रकृति व्यक्त होती है और प्रलयमें अव्यक्त हो जाती है। इसलिये मायिक वैभव व्यक्त और अव्यक्तरूपमें भगवान्की अपरा प्रकृति है।

५. भगवान्की इस अपरा प्रकृतिके व्यक्त स्वभाव से परे और भी एक पराप्रकृति द्वारा प्रकटित नित्य वैभव है, जिसे 'परव्योम' कहते हैं। यह परव्योम ही अनन्तकोटि वैकुण्ठ आदिका नित्य सनातन धाम है। वहाँ अव्यक्त भाव नहीं है अर्थात् वहाँ सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि कार्य नहीं हैं।

६. जो नित्यबद्ध जीव अपनेको अपरा प्रकृतिकी संतान मानते हैं, पुरुषकी खबर नहीं रखते, वे दैवी-माया महाकाली, चण्डी या दुर्गादेवीके त्रिशूलके अधीन होते हैं और उस त्रिशूल—त्रिताप द्वारा जर्जरित जीव या असुरगण महामायाके अन्धकार द्वारा अर्थात् कालीमूर्त्ति द्वारा मोहित होते हैं। उनके उद्धारके लिये ही ब्रह्मविद्या—भेदोंके सार स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीताका आविर्भाव है। इस श्रीमद्भगवद्गीताका यत्नपूर्वक पाठ करनेसे विष्णुके चरणधमलोंका आश्रय प्राप्त होता है, तत्पश्चात् उन श्रीचरणधमलोंके आश्रयसे भवसागरसे उद्धार लाभ करते हैं और परम मुक्त होकर भगवत्-सेवा प्राप्ति रूप चरम सिद्धि पा लेते हैं।

७. बद्ध जीवोंकी जन्म-मृत्यु तथा जरा-मरणदि त्रिताप यन्त्रणाओंको ही भव-रोग कहते हैं। भव-रोग से पीड़ित होकर उससे बचनेके लिये अल्प बुद्धिवाले व्यक्ति निर्वाण या ब्रह्म-सायुष्य मुक्तिके लिये तपस्या करते हैं। उनसे श्रेष्ठ भगवद्भक्तजन सनातनत्वकी उपलब्धि कर सनातनत्वका निर्वाण (सत्ता विनाश) न कर नित्य सनातन धाममें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिये सनातन धर्मका आचरण और उसका प्रचार करते हैं। जीवमात्र सनातन है; अतएव सनातन धर्ममें जीवमात्रका स्वगत अधिकार है।

८. महत्तत्त्व या अपरा प्रकृति २४ तत्त्वोंमें व्यक्त होती है। वे २४ तत्त्व हैं—

(१) अव्यक्त, (२) आकाश, (३) वायु, (४) अग्नि (५) जल, (६) मिट्टी, (७) मन, (८) बुद्धि, (९) अहङ्कार, (१०) रूप, (११) रस, (१२) शब्द, (१३) गन्ध, (१४) स्पर्श, (१५) चक्षु, (१६) कर्ण, (१७) नासिका, (१८) रसना, (१९) त्वचा, २०) वाणी, (२१) हाथ, (२२) पैर, (२३) गुदा और (२४) उपस्थ ।

६. आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्माके एक दिनमें अर्थात् २००० × ४३००००० सौर वर्षोंके अन्तरमें एक बार जगत्में अवतरण करते हैं—अपने भक्त और अभक्त दोनों प्रकारके लोगों पर कृपा करनेके लिये । भक्तजनोंको दर्शन देकर उनकी रक्षा करते हैं और अभक्तोंका विनाश कर उन्हें क्लेशज मुक्ति प्रदान करते हैं । भगवद्गीता हमें भवरोगका निदान देती है । गीताके अनुसार अद्वयज्ञान भगवत्स्वकी उपलब्धि करनेके लिये परम्परानुसार आचार्यकी उपासना अनिवार्य है । जो आचार्यकी उपासना नहीं करते, उनका सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है ।

१०. परम्परा या आचार्यकी अवहेला करनेवाले मूर्ख या मूढ़ व्यक्ति अपने जड़ पाण्डित्यके नशेमें चूर होकर भगवान्को मनुष्य और मनुष्यको भगवान् बतलाते हैं ।

११. षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् किसी खास जातिकी पैत्रिक सम्पत्ति नहीं हैं । वे सर्वत्र हैं, सबके उद्धारकर्त्ता हैं और सबके परम पिता हैं । वे सबका उद्धार करनेके लिये आते हैं, इसलिये उनकी वाणी—गीताका प्रचार सभी देशोंमें सभी समयोंमें जगन्मंगलके लिये आवश्यक है । जो लोग ऐसा करते हैं, वे लोग भगवान्के अति प्रिय होते हैं ।

१२. आसुरी गुणोंसे युक्त मूढ़ व्यक्ति माया प्रकृतिकी मोहिनी शक्ति द्वारा मोहित होकर जड़ उन्नतिके लिये वृथा ही तरह-तरहके 'प्लैन' करते हैं, वे नहीं जानते कि वही उन्नति उनके संहारका कारण होगी । उनको जगाकर चेतन वाणी सुनानेके लिये एक मात्र मंत्रशक्ति है—भगवद्गीता ।

१३. अपनेको बुद्धिमान कहनेवाले इन व्यक्तियों-

को संघ-बद्ध प्रचारके द्वारा यह बात समझा देनी आवश्यक है कि उनका 'प्लैन' नित्यकाल ही ध्वंश होता रहेगा । इसका कारण यह है कि जिस भूमिका-में स्थित होकर वे सुखका घर बाँधना चाहते हैं, वह भूमिका भृगतृष्णा है—सिनेमा घरका छायाचित्र है । असल चित्र तो अन्यत्र है । वहाँ लौटनेके लिये जो लेसनी चलती है, उसका नाम "Back to Godhead" है ।

१४. अन्तु, यथार्थ सभ्यताका परिचय तभी मिल सकता है, जब हम "Back to Godhead" की प्रेरणासे अनुप्राणित होकर भगवान्के समीप अपने नित्य गृहको लौट जायेंगे ।

१५. मायिक जगत्में महापापीगण जिस प्रकार जड़ शरीर प्राप्त न होकर सूक्ष्म शरीरमें भूत-प्रेतोंकी योनि लाभ कर अन्तरीक्षमें वास करते हैं, उसी प्रकार परव्योमके चिदाकाशमें निराकारवादी भगवान्की सेवासे वंचित होकर मुक्त प्राय होकर भी या परमपद प्राप्त करके भी मायिक जगत्में पुनः पतित हो पड़ते हैं । अतएव निराकार निर्विशेषवादियोंकी क्लेशसाधना सनातन धर्म नहीं है ।

१६. अव्यक्त निराकारके प्रति आसक्त चित्तवाले निर्विशेषवादी भगवान्में देह और देहीका भेद मानते हैं । इससे बढ़कर और क्या अपराध हो सकता है । इसी अपराधसे वे जन्म-जन्मान्तरों तक सनातन धामसे वंचित हो पड़ते हैं । परन्तु भाग्यवश यदि उनको सत्संग प्राप्त हो जाय और उस दुर्लभ सत्सङ्गमें वे यदि भगवान्की अप्राकृत लीला-कथाओंका, भगवान्के नाम आदिका श्रवण करें तो वे पुनः भगवद्भक्त हो पड़ते हैं । इस चिन्मयी भगवत् लीलामें प्रवेश करनेके लिये सर्वप्रथम शरणागतिकी आवश्यकता होती है । गीता इसी शरणागतिकी शिक्षा देनेके कारण भक्तिराज्यका प्रवेशिका ग्रन्थ कहलाता है । शुद्ध भक्तगण उस प्रवेशिका परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुके हैं—ऐसा समझना चाहिये । ॐ तत् सत् ॐ ।

—श्रीशमभरण भक्तिवेदान्त  
एडिटर-वैक-टू-गौडदेड,

# शरणागति

[ ॐ विष्णुपाद श्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुर ]

## अनुकूल प्रहण ( कायिक )

तव भक्ति-अनुकूल जो जो कर्म-चय । बड़े ही यतन से करूँगा मैं निश्चय ॥  
भक्ति-अनुकूल जितने विषय संसारा । करूँगा उसमें रति इन्द्रिय के द्वारा ॥  
सुनूँगा तुम्हारी कथा यत्न करके । लखूँगा तुम्हारा धाम नयन भरके ॥  
तव परसाद से करूँ देह पोषण । नैवेद्य-तुलसी द्राण करूँगा प्रहण ॥  
इन हाथों से करूँ तव सेवा मैं सदा । तेरी प्रेम नगरी में बसूँ मैं सर्वदा ॥  
काम को तुम्हारी सेवा नियोग करूँ । तव विद्वेपी को देख क्रोध से जरूँ ॥  
येही रूप सर्व वृत्ति और सर्वभाष । तव अनुकूल होके लक्ष्मी प्रभाव ॥  
तव भक्ति-अनुकूल जो जो मैं करूँ । तव भक्ति-अनुकूल मानूँ, उसे धरूँ ॥  
भक्तिविनोद नहीं जाने धर्माधर्म । भक्ति-अनुकूल तव होवें सब कर्म ॥

## प्रतिकूल वर्जन ( कायिक )

तव भक्ति-प्रतिकूल धर्म जिससे होय । बड़े यतन उसे तजूँगा निश्चय ॥  
तव भक्ति-बहिर्मुख-सङ्ग नहीं धरूँ । गौराङ्ग-विरोधियों पै दृष्टि नहीं करूँ ॥  
भक्ति-प्रतिकूल जगह न करूँ बसति । भक्ति के अप्रिय वस्तु न करूँगा रति ॥  
भक्ति के विरोध ग्रन्थ पढ़ूँ न गुनूँ । भक्ति की विरोधी बातें कभी न सुनूँ ॥  
गौराङ्ग-वर्जित भूमि तीर्थ नहीं मानूँ । भक्ति में बाधक ज्ञान-कर्म तुच्छ मानूँ ॥  
भक्ति में बाधक दिनका न करूँ आदर । भक्ति-विमुख निज जनको भी समझूँ पर ॥  
भक्ति-बाधिका सृष्टा का करूँ वर्जन । अभक्त लोगों का अन्न न करूँ प्रहण ॥  
भक्ति-प्रतिकूल जिसे मन हम जानी । तजूँगा अवश्य उसे निश्चय मन वाली ॥  
भक्तिविनोद पङ्के प्रभु के चरण । माँगता ये शक्ति, प्रतिकूल हो वर्जन ॥



# जैव-धर्म

[ गतांक से आगे ]

हरिकीर्तनसे चित्त जितना निर्मल होता है, उतना और किसी भी उपायसे नहीं होता। जब बहुतसे भक्त एक साथ मिलकर कीर्तन करते हैं, तब उसे संकीर्तन कहते हैं।

कृष्णके नाम, रूप, गुण और लीला स्मरणका नाम 'स्मरण' है। स्मरण पाँच प्रकारका होता है। किसी देखी-सुनी या अनुभवकी हुई बातका फिरसे मनन करनेका नाम 'स्मरण' है; पूर्व-विषयसे चित्तको खींच कर साधारणरूपमें मनसे किसी विषयको धारण करनेका नाम 'धारणा' है; रूप आदिका विशेष रूपसे चिन्तन करनेका नाम 'ध्यान' है; तैल धारावत अविच्छिन्न ध्यानका नाम 'ध्रुवानुस्मृति' है एवं ध्येय-मात्रकी स्मृति का नाम 'समाधि' है।

श्रवण, कीर्तन और स्मरण-भक्तिके ये तीन प्रधान अंग हैं। दूसरे समस्त अंग इन तीनोंके अन्तर्भूत हैं। श्रवण, कीर्तन और स्मरण—इन तीनों में कीर्तन ही सर्व प्रधान अंग है; क्योंकि श्रवण और स्मरण कीर्तनके अन्तर्भूत रह सकते हैं।

श्रीमद्भागवत (७।१।२३) के 'श्रवणं कीर्तनं त्रिष्णोः' श्लोकके अनुसार 'पादसेवा' या 'परिचर्या' भक्तिका चतुर्थ अंग है। श्रवण, कीर्तन और स्मरणके साथ 'पाद-सेवा' करना कर्त्तव्य है। पाद-सेवन कार्यमें अपना अकिंचनत्व, सेवामें अपनी अयोम्यता-बुद्धि तथा सेव्यमें सच्चिदानन्दत्व-बुद्धि का होना निरान्त आवश्यक है। पादसेवा कार्यमें

श्रीमुख-दर्शन, स्पर्शन, परिक्रमा, अनुव्रजन, भगवन्मदिर-गंगा-पुरुपोत्तम-द्वारका-मथुरा-नवद्वीप आदि तीर्थस्थानोंके दर्शन आदि अन्तर्भूत हैं। श्रीरूप गोस्वामीने भक्तिके ६४ अंगोंका वर्णन करते समय इनका बड़ा परिष्कार और मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया है। श्रीतुलसी-सेवा और साधुसेवा-दोनों इसी अंगके अन्तर्भूत हैं।

पंचम अंग है—अर्चन। अर्चन-मार्गमें अधिकार और प्रक्रिया सम्बन्धी अनेक विचार हैं, श्रवण, कीर्तन और स्मरणमें नियुक्त होने पर भी यदि अर्चन-मार्गमें अद्धा हो, तो श्रीगुरुदेवसे मंत्र-दीक्षा लेकर अर्चन-क्रिया करनी चाहिए।

ब्रजनाथ—'नाम और मन्त्रमें क्या भेद है ?'

बाबाजी—'श्रीभगवन्नाम ही मंत्रके प्राण हैं। नाममें 'नमः' आदि शब्दोंको लगाकर भगवानसे कोई एक सम्बन्ध स्थापन कर ऋषियोंने नामसे किसी विशेष प्रकारकी शक्तिका उद्घाटन किया है। (क) नाम निरपेक्ष तत्त्व है। तथापि देहादि मायिक उपाधियोंके कारण यह जड़ विषयोंमें फँस गया है। अब उसके चित्तको विषयोंसे हटानेके लिये मर्यादा-मार्गमें अर्चनकी विधियोंका निरूपण हुआ है। विषयी लोगोंके लिये दीक्षा महण करना निरान्त आवश्यक है। श्रीकृष्णमंत्रमें 'सिद्ध-साध्य-सुसिद्ध-अरि'—विचारकी (ख) आवश्यकता नहीं होती। कृष्णमन्त्र-दीक्षा ही जीवके लिये अत्यन्त कल्याणकारी है। संसारमें जितने

(क) कृष्ण मंत्र अथ सदा एह मंत्रसारः॥कृष्णमंत्र हैते इवे संसार मोचन । कृष्णनाम हैते पावे कृष्णेर चरणा॥ नाम विना कलिकाखे नाहि आर धर्म । सर्वमंत्रसार नाम एहं शास्त्र मर्म॥ ( चै० ब० आ० ७।१२-७४ )

(ख) गुरुदेव शिष्यको दीक्षा देनेके समय सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि (शत्रु) इन चार दोषोंका शोधन

प्रकारके मंत्र हैं, उनमें कृष्णमन्त्र सबसे अधिक शक्ति-शाली है। सद्गुरुके निकट यह मंत्र प्राप्त करनेके साथ-ही-साथ सन्-शिष्य कृष्णबल प्राप्त करता है। श्रीगुरुदेव जिज्ञासुको अर्चनकी शिक्षा देते हैं। संक्षेपमें यही ज्ञातव्य है कि श्रीकृष्णजन्म, कार्तिक-व्रत, एकादशी-व्रत, माघ-स्नान आदि अर्चन-मार्गके अन्तर्गत हैं। अर्चनके विषयमें यह जान लेना आवश्यक है कि कृष्णके साथ कृष्ण-भक्तोंका भी अर्चन होना नितान्त आवश्यक है।

वन्दन ही वैधीभक्तिका छठवाँ अङ्ग है। पादसेवा और कीर्तन आदिमें वन्दन अन्तर्भूत होने पर भी इसे पृथक् अङ्ग बतलाया गया है। नमस्कारको ही वन्दन कहते हैं। नमस्कार दो प्रकारका होता है—एकांग नमस्कार और अष्टांग नमस्कार। एक हाथसे किया गया नमस्कार, वक्षोसे ढके हुए शरीरसे नमस्कार, भगवानके आगे, पीछे और बायेंसे किया गया नमस्कार तथा गर्भ-मन्दिरमें किया गया नमस्कार—ये सब नमस्कार अपराध माने गये हैं।

दास्य सातवाँ अङ्ग है—मैं कृष्णका दास हूँ, ऐसा अभिमान ही दास्य है। दास्य-भावसे युक्त होकर जो कृष्णका भजन होता है, वही भजन श्रेष्ठ है। नमः, स्तुति, समस्त कर्मोंका अर्पण, परिष्वदा, आचरण, स्मृति, और आज्ञापालन—ये सभी दास्यके अन्तर्भाव्य हैं।

सख्य आठवाँ अङ्ग है—कृष्णके प्रति हित-चेष्टासे युक्त यन्धुभाव लक्षण ही सख्य है। सख्य दो प्रकारका होता है। एक वैधांग सख्य और दूसरा रागांग-सख्य। यहाँ पर सख्यका तात्पर्य वैधांग सख्यते है।

अर्चा मूर्त्तिकी सेवामें जो सख्य भाव होता है, वह वैध-सख्य है।

आत्मनिवेदनको नयाँ अङ्ग कहते हैं—शरीरसे लेकर शुद्ध आत्मा तक सब कुछ कृष्णको अर्पण करनेका नाम आत्म-निवेदन है। अपने लिये चेष्टा-रहित होना तथा कृष्णके लिये चेष्टा युक्तहोना ही आत्म निवेदनका लक्षण है। जैसे विक्रीत गायको अपने पालन-पोषणकी चिन्ता नहीं रहती, उसी प्रकार कृष्णकी इच्छाके अधीन रहना तथा अपनी इच्छाको उनके अधीन रखना भी आत्मनिवेदनका लक्षण है। वैध-आत्मनिवेदनका उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

स वै मनः कृष्ण-पदारविन्दयोः—  
 वंचासि वैकुण्ठ-गुणानुवर्णने ।  
 करौ हरेर्मन्दिर-मार्जनादिषु  
 श्रुतिस्मकाराच्युत-सत्कथोदये ॥  
 मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने इधौ  
 तद्भृत्यगात्र स्पर्शोऽङ्गसङ्गमम् ।  
 ब्राणक्ष तत्पादसरोज-सौरभे  
 भीमचुलस्या रसनां तदपिते ॥  
 पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे  
 शिरो-हृदीकेश-पदानिवन्दने ।  
 कामाक्ष दास्ये न तु काम-कान्यया  
 यथोत्तमः श्लोक-जनाश्रयारतिः ॥ (क)

बाबाजीके मधुर उपदेशको श्रवण कर ब्रजनाथ और विजयकुमार आनन्दसे गद्गद् होकर बाबाजी महाशयको दण्डवत्-प्रणाम करते हुए बोले—‘प्रभो ! आप साक्षात् भगवत् पार्षद हैं; आपके उपदेशासूतका पान कर हम दोनों आज कृतार्थ हुए। जाति-कुल और

करनेके पश्चात् दीक्षा देंगे। चारों दीवों और उनके शोधनके सम्बन्धमें हरिभक्तिविलास प्रथम विलासके २२ अनुच्छेद से १०३ अनुच्छेद तक दृश्य है। परन्तु अष्टादश अक्षरका मंत्रराज अर्थात् कृष्णमंत्रमें इन चार दीवोंके विवेचनकी आवश्यकता नहीं होती। यह मंत्र इतना शक्तिशाली होता है कि यह सिद्ध-साध्य-सुसिद्ध-अरि—इन दीवोंकी अपेक्षा नहीं रखता। प्रैलोक्य-सम्मोहन तंत्रमें महादेवने कहा है—‘अष्टादशाक्षर मंत्राधिकृत्य श्रीशिवेनोक्तम्। न चात्र शास्त्रा दोषो नशस्वादि-विचारणा ॥’ और बृहद्गौतमीयमें भी देखा जाता है,--‘सिद्ध-साध्य-सुसिद्धारि-रूपा तात्र विचारणा। सर्वेषां सिद्ध-मंत्रानां यतो प्रज्ञाशरो मनुः ॥’ इस मन्त्रका प्रत्येक अक्षर ही ब्रह्म है।

(क) अम्बरीष महाराजने अपने मनको श्रीकृष्णके चरधारविन्द युगलमें, वाणीको भगवद्गुणानुवर्णनमें,

विद्याके अहङ्कारमें हमारे दिन व्यर्थ ही बीत रहे थे । जन्म-जन्मान्तरोंकी राशि-राशि सुकृतिके प्रभावसे ही हमने आपकी कृपा पायी है ।'

विजयकुमारने कहा—'हे भागवत प्रवर ! श्री-वृन्दावनदास ठाकुरने मुझे श्रीमायापुर-योगपीठका दर्शन करनेकी आज्ञा दी थी । उनकी कृपासे ही आज मुझे भगवद्धाम और भगवत् पार्षदका दर्शन संभव

दशमोर्वी अध्याय समाप्त

हो सका है । यदि कृपा हो तो, कल शामको यहाँ पर फिर आऊँगा ।'

श्रीवृन्दावनदास ठाकुरका नाम सुनते ही वृद्ध बाबाजी साष्टांग दण्डवत् करते हुए बोले—'मेरी चैतन्यलीलाके जो व्यासावतार हैं, मैं उनको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ।'

दिन अधिक चढ़ आया, ब्रजनाथ और विजय-कुमार ब्रजनाथके घरके लिये रवाना हुए ।

## जैव-धर्म

### बीसवाँ अध्याय

प्रमेयान्तर्गत अभिधेय तत्त्वका विचार—वैद्य साधन-भक्ति

दोपहरके पहले ही ब्रजनाथ और विजयकुमार घर पहुँच गये । ब्रजनाथकी माता पहलेसे ही उनकी प्रतीक्षा कर रही थी । उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने भाई को स्वादिष्ट प्रसादान्न भोजन कराया । भोजनके पश्चात् मामा और भानजेमें परस्पर नाना-प्रकारकी प्रेमभरी बातें होने लगीं । ब्रजनाथने जिन उपदेशोंको बाबाजी महाराजसे पहलेसे श्रवण किये थे, उन्हीं उपदेशोंको क्रमशः अपने मातुल महोदयके निकट बतलाने लगे ।

उन अमृतमय उपदेशोंको सुनकर विजयकुमार बड़े आनन्दित हुए और बोले—'तुम्हारा बड़ा सौभाग्य

है । बड़े सौभाग्यसे सत्संग प्राप्त होता है । तुम्हें बाबाजी जैसे दुर्लभ और परम संतका संग प्राप्त है । उनसे तुमने परमार्थ तत्त्वके सम्बन्धमें बहुत कुछ श्रवण किया है । भक्ति-कथा और हरि-कथाओंके श्रवणसे कल्याणकी प्राप्ति होती तो है; परन्तु महत् पुरुषोंके मुखसे यदि ये कथाएँ सुनी जाँय, तो वह कल्याण बहुत ही शीघ्र होता है । बाबा ! तुम समस्त शास्त्रोंमें सुपण्डित हो, खासकर न्यायशास्त्रके अद्वितीय पण्डित हो, वैदिक ब्राह्मणोंमें कुलीन हो, निर्धन भी नहीं हो, ये सारी सम्पत्तियाँ इस समय तुम्हारे लिये अलंकार स्वरूप हो रही हैं । इसका कारण यह है कि

हाथोंकी श्रीहरिसन्दिरमार्जन सेचनमें और अपने कानोंकी अच्युतकी मङ्गलमयी कथाके श्रवणमें लगा रखा था । उन्होंने अपने नेत्र मुकुन्द-मूर्ति एवं मन्दिरोंके दर्शनमें, अङ्ग-सङ्ग भगवद्भक्तोंके शरीर-स्पर्शमें, शक्तिका उनके चरण-कमलोंपर चढ़ी श्रीमती तुलसीके दिव्य गंधमें, और रसना ( जिह्वा ) को भगवान्के प्रति अर्पित नैवेद्य-प्रसादमें संलग्न कर दिया था । उनके पैर भगवान्के चरण आदिकी पैदल यात्रा करनेमें ही लगे रहते और वे सिरसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी चन्दना किया करते—राजा अम्बरीषने माला, चन्दनादि भोग-सामग्रियोंको भगवान्को सेवामें समर्पित कर दिया था—भोगनेकी की इच्छासे नहीं, बल्कि इसलिये कि इससे वह भगवत्प्रेम प्राप्त हो, जो पवित्रकीर्ति भगवान्के निज-जनोंमें ही निवास करता है ।

तुम साधु-वैष्णवोंका पदाश्रय लाभ कर श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंमें रुचि प्राप्त कर लिये हो ।'

इसी प्रकार परमार्थ-सम्बन्धी चर्चाएँ चल ही रही थीं कि बीच ही में ब्रजनाथकी माता वहाँ उपस्थित हुई और विजयकुमारसे बोली—'भाई ! तुम बहुत दिनों पर आये हो, ब्रजको जरा समझा-बुझाकर गृहस्थ कर दो । इसके व्यवहारोंसे मुझे डर लगता है कि यह कहीं साधु न हो जाय । विवाहके लिये अनेक लोग आते हैं, परन्तु इसने तो विवाह न करनेकी प्रतीक्षा करली है । मेरी सासजीने भी बहुत प्रयत्न किये, परन्तु कुछ कर न सकी ।'

बहनकी बात सुनकर विजयकुमारने कहा—'मैं यहाँ दस-पन्द्रह दिनों तक ठहरूँगा । मैं क्रमशः इस विषयमें परामर्शकर तुम्हें पीछे बतलाऊँगा । अभी घरके भीतर जाओ ।'

ब्रजनाथकी माँ अन्दर चली गयी, वे दोनों पुनः परमार्थिक चर्चामें लग गये । वह दिन इसी प्रकार बीत गया ।

दूसरे दिन भोजन करनेके पश्चात् विजयकुमार बोले—'ब्रजनाथ ! आज शामको हम दोनों श्रीवास-अंगन जायेंगे और वहाँ बाबाजीके निकट श्रीरूप गोस्वामी द्वारा उल्लिखित ६४ प्रकारके भक्तिके अङ्गों का विस्तृत विवेचन श्रवण करेंगे । ब्रजनाथ ! तुम्हारे जैसा सत्संग मुझे जन्म-जन्मांतरमें प्राप्त हो । देखो, बाबाजी महाशयने साधन-भक्तिके दो मार्ग बतलाये हैं—एक वैधमार्ग और दूसरा राग-मार्ग । हमलोग वास्तवमें वैधमार्गके अधिकारी हैं । अतः हमें राग-मार्गके सम्बन्धमें उपदेश श्रवण करनेके पहले वैध-मार्गको भलीभाँति समझकर साधन कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए । गत कल बाबाजी महाराजने नवधा भक्तिका उपदेश दिया है, परन्तु समझ नहीं पाता कि नवधाभक्तिका प्रारम्भ कैसे करूँ ? आज इस विषय में अच्छी तरहसे समझ लेना होगा ।'

बातों-बातमें शाम हो गयी । सूरजकी किरणें

पृथ्वीसे उठकर वृक्षोंकी ऊँची-ऊँची टहनियोंसे खेलने लगी । विजयकुमार और ब्रजनाथ श्रीवास अंगनमें उपस्थित हुए और वैष्णव-मण्डलीको दण्ड-वत प्रणाम कर वृद्ध बाबाजीकी कुटीमें प्रविष्ट हुए ।

बाबाजी जिज्ञासु भक्तोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें बड़े प्रेमसे छातीसे लगाकर आसनपर बैठाये । वे लोग भी बाबाजीको दण्डवत-प्रणाम कर बैठे ।

दो-एक बातोंके बाद ही विजयकुमार बोले—'प्रभो ! हमलोग आपको बहुत ही कष्ट देते हैं । आप भक्तवत्सल हैं—कृपाकर उस कष्टको स्वीकार करते हैं । आज हमलोग आपके निकट श्रीरूप गोस्वामी द्वारा लिखे गये भक्तिके ६४ प्रकारके अङ्गोंके सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, यदि हमें इसका अधिकारी समझें तो कृपाकर बतलावें, जिससे हमलोग शुद्ध भक्तिका सहज ही अनुभव कर सकें ।'

बाबाजीने मुस्कराते हुए कहा—'सावधानी से श्रवण करना, मैं श्रीरूपगोस्वामी द्वारा बतलाये गये भक्तिके ६४ प्रकारके अङ्गोंको बतला रहा हूँ । ६४ अंगोंमें प्रथम दस प्रारम्भिक अङ्ग हैं । ये दस हैं—(१) गुरु-पदाश्रय, (२) गुरुके निकट कृष्णदीक्षा और और शिक्षा, (३) विश्वासपूर्वक गुरु सेवा, (४) साधु मार्गका अनुसरण, (५) सद्धर्मकी जिज्ञासा, (६) कृष्ण के उद्देश्यसे भोग-विलासका त्याग, (७) द्वारका आदि धामोंमें तथा गंगाके निकट वास, (८) जीवन-निर्वाहो-पयोगी यथायोग्य अर्थ या विषय स्वीकार, (९) एकादशी, जन्माष्टमी आदि हरिवासरुका सम्मान, (१०) आँदला, पीपल आदि वृक्षोंको गौरव दान ।

इनके आगेवाले दस अङ्ग निषेधके रूपमें पालनीय हैं—

(११) कृष्ण-बहिर्मुख व्यक्तियोंका संग त्याग, (१२) अनाधिकारीको शिष्य न करना, (१३) आड-म्बरपूर्ण उद्यमों (महोत्सव आदि) का परित्याग, (१४) अनेक ग्रन्थोंका पठन-पाठन और व्याख्यावाद

का परित्याग, (१५) व्यवहारमें कृपणताका परित्याग (१६) शोक आदिके अधीन न होना, (१७) अन्यान्य देवताओंकी अर्चना न करना, (१८) प्राणीमात्रको उद्वेग न देना, (१९) सेवापराध और नामापराधसे सर्वदा दूर रहना, (२०) भगवान् और भक्तोंकी निन्दा आदि सुनकर वर्दाश न करना ।

—इन बीस प्रकारके अंगोंको भक्ति-मंदिरका प्रवेश-द्वार स्वरूप समझो । इनमें गुरु-पदाश्रय आदि प्रथम तीन प्रधान कार्य हैं ।

(२१) वैष्णव-चिह्न धारण, (२२) हरिनामाक्षर धारण, (२३) निर्माल्य ( भगवान्को दी हुई माला ) आदि धारण, (२४) भगवान्के सम्मुख नृत्य, (२५) श्रीगुरु, वैष्णव और भगवान्को दण्डत-प्रणाम, (२६) उन्हें दर्शनकर आसनसे उठकर अभिवादन, (२७) श्रीमूर्तिका अनुब्रज्या अर्थात् अनुगमन करना, (२८) भगवान्के मंदिरोंमें जाना, (२९) मन्दिर परिक्रमा, (३०) अर्चन (३१) परिचर्या (सेवा), (३२) गान, (३३) भगवत् कृपाकी प्रतीक्षा, (३४) त्रिस्त्रया-ओंमें आचमनपूर्वक जप, (३५) विज्ञप्ति अर्थात् दीनतापूर्वक प्रार्थना, (३६) स्तव, (३७) भगवत् प्रसादका आस्वादन, (३८) श्रीचरणामृत पान करना, (३९) धूप-माल्यादिका सौरभ ग्रहण, (४०) श्रीमूर्तिका स्पर्श, (४१) श्रीमूर्तिका दर्शन, (४२) आरती और उत्सव आदि दर्शन, (४३) श्रीहरिके नाम, रूप, गुण और लीलाओंका श्रवण, (४४) संकीर्तन, (४५) स्मरण, (४६) ध्यान, (४७) दास्य, (४८) सख्य, (४९) आत्म-समर्पण, (५०) प्रिय वस्तु कृष्णको समर्पण, (५१) श्रीकृष्णके सुखके लिये निरन्तर चेष्टा, (५२) भगवान्के चरणोंमें शरणागति, (५३) तुलसी-सेवा (५४) श्रीमद्भागवत आदि भक्ति-ग्रन्थोंको सम्मान देना, (५५) भगवान्के आविर्भाव स्थान मथुरा आदि का माहात्म्य श्रवण और कीर्तन करना तथा उन धामोंकी परिक्रमा आदि करना, (५६) वैष्णवोंकी सेवा, (५७) शक्तिके अनुसार प्राप्त सामग्रियोंसे साधुओंकी गोष्ठीमें महोत्सव, (५८) चातुर्मास्य व्रत

और विशेष रूपसे कार्तिक मासमें नियम-सेवाका पालन, (५९) भगवान्के जन्मके दिन उत्सव, (६०) श्रद्धा पूर्वक श्रीमूर्तिकी पूजा, (६१) रसिक भक्तोंके साथ श्रीमद्भागवतका अर्थ आस्वादन करना, (६२) स्वजातीय स्निग्ध अथवा अपनेसे श्रेष्ठ साधु-संतोंका संग, (६३) श्रीनाम संकीर्तन और (६४) मथुरा आदि भगवद्दामोंमें वास ।

अन्तिम पाँच अङ्गोंका वर्णन यद्यपि पिछले अङ्गों के साथ किया गया है तथापि ये पाँच अङ्ग अत्यन्त श्रेष्ठ अङ्ग हैं । इनका नाम पंचांग-भक्ति भी है । इन सब अङ्गोंका शरीर, इन्द्रियों और अन्तःकरणके द्वारा पालन कर कृष्ण-उपासना की जाती है । २१ से ४९ तक के अङ्ग कृष्ण-दीक्षा आदि [नं० २] अङ्गके अन्तर्गत हैं ।

विजय-‘प्रभो ! (१) श्रीगुरु पदाश्रयके सम्बन्धमें हमें कुछ विस्तारपूर्वक शिक्षा दें ।’

बाबाजी-‘शिष्य अनन्य कृष्णभक्तिका अधिकारी होकर उपर्युक्त गुरु के निकट कृष्णतत्त्व जाननेके लिये श्रीगुरुका पदाश्रय करेंगे । श्रद्धालु होने पर ही जीव कृष्णभक्तिका अधिकारी होता है । पिछले जन्मोंकी सुकृतियोंके प्रभावसे संतोंके मुखसे हरिकथा श्रवण कर हरिके विषयमें जो दृढ़ विश्वास पैदा होता है, उसीका नाम ‘श्रद्धा’ है । ‘श्रद्धा’ के साथ-साथ थोड़ी शरणापत्ति भी उदय होती है । श्रद्धा और शरणापत्ति प्रायः एक ही तत्त्व हैं । संसारमें कृष्णभक्ति ही सर्वोन्नत है—कृष्णभक्तिके जो अनुकूल होगा, उसे अपना कर्त्तव्य मान कर करूँगा; श्रीकृष्णभक्तिके प्रतिकूल व्यापारका वर्जन करूँगा; कृष्ण ही मेरे एक मात्र रक्षाकर्त्ता है; मैं कृष्णको अपना एक मात्र पालनकर्त्ताके रूपमें वरण करता हूँ; मैं अत्यन्त दीन और अकिञ्चन हूँ और मेरी स्वतन्त्र इच्छा अच्छी नहीं है, कृष्णकी इच्छाका अनुगत्य ही सब तरहसे ब्रह्माण्ड है—ऐसा दृढ़ विश्वास जिसे हो गया है, वे ही अनन्य भक्तिके अधिकारी हैं । यह अधिकार प्राप्त होते ही जीव भक्तिकी शिक्षाके लिये

व्याकुल होकर जहाँ सद्गुरु पाता है, उनके निकट उपस्थित होता है तथा उनका पदाश्रय प्रदण करता है अर्थात् उनका शिष्य होकर भक्तिकी शिक्षा ग्रहण करता है।

'तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवाभिगच्छेत्,  
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। (क)

[ मुण्डकोपनिषद् — १।२.१२

आचार्यवान् पुरुषो वेत् । (ख)

का० ६।१।१२

श्रीहरिभक्तिविज्ञानमें ( १।२३-६४ ) सद्गुरु और सत् शिष्यका लक्षण विस्तारपूर्वक दिया गया है। सारार्थ यह है कि शुद्धचरित्रसे युक्त ब्रह्मवान् परम ही शिष्य होनेके योग्य है तथा शुद्धभक्तिसे सम्पन्न, भक्तितत्त्वविद्, चरित्रवान्, सरल, निर्लोभ, मायावाद-शून्य और कार्यदक्ष पुरुष ही सद्गुरु हैं। इस प्रकारके गुणोंसे युक्त, स<sup>त्</sup> समाज-मान्य ब्राह्मण होने पर दूसरे-दूसरे वर्णके लोगोंके गुरु हो सकते हैं। ब्राह्मणके अभावमें शिष्य अपनेसे उन्नत वर्णके व्यक्तिको गुरु कर सकता है। इन विधानोंका मूल तात्पर्य यह है कि वर्णभ्रमका विचार छोड़कर जहाँ कहीं भी कृष्णतत्त्वविद् व्यक्ति मिले, उनको गुरु बनाया जा सकता है। यदि ब्राह्मण कुलमें परम किसी व्यक्तिमें उपयुक्त गुण पाये जाँय और उनको गुरु बनाया जाय तो आर्यवंशमें पैदा हुए वर्णाभिमानो संसारमें कुछ सुविधा होती है, यही केवल मात्र सुविधा होती है; वस्तुतः उपयुक्त व्यक्ति ही गुरु है। शास्त्रमें गुरु-शिष्य परीक्षाके नियम और काल निर्णय किये हैं; उसका तात्पर्य यह कि जिस

समय गुरु शिष्यको अधिकारी समझेंगे और शिष्य जब गुरुको शुद्धभक्त समझकर उनके प्रति श्रद्धा करेंगे, उसी समय गुरु शिष्यके प्रति कृपा करेंगे।

गुरु दो प्रकारके होते हैं—दीक्षागुरु और शिक्षागुरु। दीक्षागुरुके निकट दीक्षा ग्रहण करनी और चाहिए साथ ही साथ अर्चनके सम्बन्धमें शिक्षा लेनी चाहिए। दीक्षागुरु एक होते हैं और शिक्षागुरु अनेक हो सकते हैं। दीक्षागुरु भी शिक्षागुरु के रूपमें शिक्षा देनेमें समर्थ हैं।

विजयकुमार—'दीक्षागुरु अपरित्यज्य है अर्थात् गुरुका त्याग नहीं करना चाहिए। ऐसी दशामें यदि गुरुदेव सत्शिक्षा देनेमें समर्थ न हों तो वे कैसे शिक्षा देंगे ?'

बाबाजी—'गुरु वरण करनेके समय गुरुको शब्दोक्त तत्त्व (वेदको भलीभाँति जानने वाले) और परतत्त्वमें पारङ्गत देखनेके लिये परीक्षा ली जाती है, जैसे गुरु सर्व-प्रकारसे तत्त्व-उपदेश करनेमें अवश्य ही समर्थ होंगे। दीक्षागुरुको त्याग करनेकी विधि नहीं है, परन्तु दो परिस्थितियोंमें उनका त्याग किया जा सकता है। पहली परिस्थिति यह कि गुरु-वरणके समय यदि शिष्यने गुरुकी तत्त्वज्ञता और वैष्णवता आदि गुणोंकी परीक्षा किये बिना ही उन्हें गुरु बना लिया हो, परन्तु पीछे समय पर उस गुरु द्वारा कोई कार्य न हो, तो जैसे गुरुका परित्याग करना चाहिए। इसके बहुतसे शास्त्र-प्रमाण हैं—

यो व्यक्ति न्याय-रहितमन्यायेन शृणोति यः ।

तावुर्भी नरकं धोर व्रजतः कालमभयम् ॥ (ग)

—नारदपञ्चरात्र (ह. भ. वि. १।६२

[क] उस भगवद वस्तुका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हाथमें समिधा लेकर वेदको भलीभाँति जाननेवाले और भगवत्सेवा परायण ब्राह्मण सद्गुरुके पास कायमबोधाश्रय सब प्रकारसे विनयपूर्वक गमन करे।

[ख] जिसने आचारवान् सद्गुरुका अश्रय लिया है, उसने उस परम ब्रह्मको जान लिया है।

[क] जो आचार्यके वेशमें अन्याय अर्थात् सार्वतशास्त्र विरोधी शिक्षा प्रदान करते हैं और जो [शिष्यरूपमें] अन्याय रूपसे उसे श्रवण करते हैं, वे दोनों ही अनन्त कालके लिये धोर नरकमें पड़ते हैं।

गुरोरप्यवलितस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथ-प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥ [क]

—[महाभारत उ. प. १०६।२५ और ना.प.१।१०।२०]

अवैष्णवोपदिष्टेन मंत्रेण निरयं व्रजेत् ।

पुनरथ विधिना सम्यग् ब्राह्मवेद्वैष्णवाद् गुरोः ॥ [ख]

—[हरिभक्तिविलास ४ १४४]

दूसरी परिस्थिति यह कि—गुरु-वरण करनेके समय गुरुदेव वैष्णव और तत्त्वज्ञ थे, परन्तु असत्-संगके प्रभावसे पीछे मायावादी या वैष्णव-विद्वेषी हो गये; ऐसी दशामें जैसे गुरुका त्याग करना कर्त्तव्य है। यदि वरण किये गये गुरुदेव मायावादी या वैष्णव-द्वेषी अथवा पापासक्त न हों, तो अल्पज्ञताके लिये उनका त्याग करना उचित नहीं। ऐसी अवस्थामें उनको गुरुका सम्मान प्रदान करते हुए उनसे आज्ञा लेकर किसी दूसरे तत्त्वज्ञ और वैष्णव पुरुषकी सेवा-पूर्वक उनसे तत्त्व-शिक्षा करेंगे।

विजय—[२] कृष्ण-दीक्षादि शिक्षाके सम्बन्धमें बतलाइए।

बाबाजी—श्रीगुरुके निकट भगवद्-अर्चन और विशुद्ध भागवत-धर्मकी शिक्षा ग्रहण करते हुए रत भावसे कृष्ण-सेवा और कृष्णानुशीलन करना चाहिए, अर्चनके अंगोंका विवेचन पीछे किया जायगा। सम्बन्ध-ज्ञान, अभिधेय-ज्ञान और प्रयोजन-ज्ञानके सम्बन्धमें श्रीगुरुदेवसे शिक्षा लेनेकी नितान्त आवश्यकता है।

विजय—[३] विश्वासपूर्वक गुरु-सेवा कैसी होती है ?

बाबाजी—श्रीगुरुदेवको मरणशील अर्थात् साधारण जीव नहीं समझना चाहिए, बल्कि उनको

सर्वदेवमय जानना चाहिए। उनकी कभी भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, उनको सर्वदा वैकुण्ठ-तत्त्व-समझना चाहिए।

विजय—[४] साधु-मार्गका अनुसरण किसे कहते हैं ?

बाबाजी—जिस किसी उपायसे कृष्णके चरणोंमें रुत लगाया जाय, उसे साधन भवित तो कहा जा सकता है; परन्तु पूर्व-महाजन जिस मार्गका अनुसरण कर गये हैं, उसी मार्गका अनुसरण करना कर्त्तव्य है। इसका कारण यह है कि वह मार्ग सर्वदा दुःस्वरहित, श्रम-रहित और समस्त कल्याणका हेतु होता है।

स मृग्यः श्रेयसां हेतुः पन्थाः सन्ताप-व्रजितः ।

अनघास-श्रमं पूर्वं येन सन्तः प्रतस्थिरे ॥ [ग]

[स्कन्द पुरा०]

कोई भी पन्थ किसी एक व्यक्ति द्वारा सुन्दर-रूपसे निरूपित नहीं होता। पूर्व-महाजनोंने एक के बाद दूसरेने क्रमशः उस भक्तियोग पन्थको साफ-सुथरा किया है, उस पथकी छोटी मोटी समस्त विघ्न-बाधाओंको दूरकर उसे सहज, सरल और निर्भय बनाया है। इसलिये उसी मार्गका अवलम्बन करना ही कर्त्तव्य है। श्रुति, स्मृति, पुराण और पंचरात्र-इन शास्त्रोंकी विधियोंका उल्लंघन कर यदि श्रीहरिकी ऐकान्तिकी अर्थात् अनन्या भक्ति भी की जावे तो उस भक्तिसे कभी भी कल्याण नहीं हो सकता, बल्कि उसे उत्पातका हेतु ही समझना चाहिए—

श्रुति स्मृति-पुराणादि-पञ्चरात्र-विधि विना ।

ऐकान्तिकी हरेभक्तिरुपात्तायैव कल्पते ॥

—ब्रह्मयामल [भक्तिरसासृत्सिन्धु]

[क] शिष्यको क्या करना चाहिए अथवा क्या नहीं करना चाहए—इसे जो गुरु जानते नहीं हैं एवं कुसंगके प्रभावसे अथवा वैष्णव-विरोधके फलस्वरूप उन्मार्गगामी सिद्ध होनेपर जैसे गुरुका त्याग करना कर्त्तव्य है।

[ख] [स्त्रीसंगी कृष्णभक्तिरहति] अवैष्णव गुरुसे मन्त्र ग्रहण करने से नरक होता है। अतएव शास्त्रीय विधियोंसे पुनः वैष्णव गुरुके निकट मन्त्र ग्रहण करना चाहिए।

[ग] पूर्व-महाजनवृन्द जिस मार्गको अत्यन्त सुलभ अर्थात् श्रमरहित जानकर ग्रहण किये हैं, वही पथ कल्याण-प्राप्तिके लिये सन्तापरहित है, अतएव वही पथ एकमात्र ग्रहण करने योग्य है।

विजय—‘हरिके प्रति अनन्या भक्ति उत्पातका कारण कैसे हो सकती है, कृपया स्पष्ट कर बतलाइये।’

बाबाजी—‘शुद्धभक्तिका ऐकान्तिक भाव अर्थात् अनन्य भाव पूर्व-महाजन-पथका अवलम्बन करनेसे ही प्राप्त होता है। पूर्व महाजन-पथको छोड़कर किसी दूसरे पथकी सृष्टि करनेसे ऐकान्तिक भाव प्राप्त नहीं होता। इसीलिये दत्तात्रेय, बुद्ध आदि अर्वाचीन प्रचारकगण शुद्धभक्तिको समझ न सकने के कारण उसके कुछ-कुछ भावाभासको ग्रहण कर किसीने मायावादमिश्र, किसीने नास्तिकतामिश्र एक-एक कदर्य पन्थ प्रदर्शन कर उसीमें ऐकान्तिकी हरिभक्तिका आरोप किया है, परन्तु वास्तवमें उन लोगोंके द्वारा प्रवर्तित पथ हरिभक्ति नहीं हैं—उपात-विशेष हैं। राग मार्गीय भजनमें श्रुति-स्मृति-पुराण-पंचरात्रादि विधियोंकी अपेक्षा नहीं रहती। वहाँ तो केवल ब्रजजनानुगमनकी अपेक्षा होती है। परन्तु विधिमार्गके अधिकारी साधकोंको ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, व्यास और शुक आदि महाजनों द्वारा निर्दिष्ट एकमात्र भक्तिपथका अवलम्बन करना आवश्यक है। अतएव वैध-भक्तोंके लिये साधुमार्ग अनुसरणके अतिरिक्त कोई भी दूसरा उपाय नहीं है।’

विजय—(५) ‘सद्धर्मकी जिज्ञासा कैसे होती है?’

बाबाजी—‘सद्धर्मका अर्थ सच्चा धर्म अथवा सच्चे संतोंका धर्म है। सद्धर्म समझनेके लिये अत्यन्त आग्रहपूर्वक जिज्ञासा करनेको ही सद्धर्मकी जिज्ञासा कहते हैं।’

विजय—(६) कृष्णके उद्देश्यसे भोग विलासका त्याग किसे कहते हैं?’

बाबाजी—‘आहार-विहार आदि द्वारा सुख भोगनेका नाम भोग है, यह भोग प्रायः भजन-विरोधी होता है। कृष्ण-भजनके उद्देश्यसे ऐसे-ऐसे भोगोंका परित्याग करनेसे भजन सुलभ होता है। मद्यपान करनेवाले व्यक्तिकी तरह भोगमें आसक्त व्यक्ति

भोगोंको भोगनेमें इस प्रकार लिप्त रहता है कि वह शुद्ध-भजन कर नहीं सकता। अतएव केवल भगवत्-प्रसादका ही सेवन करना चाहिए। सेवाके उपयोगी-शरीरकी रक्षा करना भी कर्तव्य है। एकादशी, जन्माष्टमी, रामनवमी, फाल्गुनी पूर्णिमा, नृसिंह चतुर्दशी आदिके दिन समस्त प्रकारके भोगोंका त्याग करना चाहिये।’

विजय—(७) द्वारका आदि धामोंमें तथा गंगाके निकट वासका तात्पर्य क्या है?’

बाबाजी—‘जिन-जिन स्थानोंमें भगवान्की जन्म-आदि लीलाएँ हुई हैं, उन स्थानों और गंगा आदि पुण्य-सलिला नदियोंके निकट वास करनेसे भक्ति-निष्ठा उत्पन्न होती है।’

विजय—‘श्री नवद्वीपमें वास करनेसे जो पवित्रता होती है, वह गंगाके कारण होती है या इसका कोई दूसरा कारण भी है?’

बाबाजी—‘अहा! श्रीनवद्वीपके सोलह कोसके भीतर जहाँ भी वास क्यों न किया जाय, उससे वृन्दावनमें ही वास होता है, विशेषकर मायापुरमें यदि वास किया जाय। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारका—इन-सात भोजदायिका पुरियोंमें यह ‘श्रीमायापुर’ अतिशय प्रधान तीर्थ है। इसका कारण यह है कि यहाँ पर श्रीमन्महाप्रभुने अपने निरयधाम—श्वेतद्वीपको अवतीर्ण किया है। श्रीमन् महाप्रभुके चार शताब्दी बाद यह श्वेतद्वीप पृथ्वीके समस्त तीर्थों स्थलोंकी अपेक्षा प्रधान तीर्थ स्थान होगा। इस जगह वास करनेसे समस्त प्रकारके अपराध दूर हो जाते हैं तथा शुद्धभक्ति प्राप्त होती है। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीने इस धामको वृन्दावनसे अभिन्न कह कर भी किसी विषयमें इसका माहात्मा अधिक दिखलाया है।’

विजय—‘जीवननिर्वाहोयोगी अर्थ या विषय स्वीकारका तात्पर्य क्या है?’

बाबाजी—‘नारदीय पुराणमें कहा गया है—

शावता स्यात् स्वनिर्वाहः स्वीकृत्यात्तावदर्थावत् ।

आधिक्ये न्यूनतायां च व्यवृते परमाश्रितः ॥ [क]

वैधीभक्तिके अधिकारी वर्णाश्रम धर्मके अनुसार नियत सदुपायोंके द्वारा अर्थ-उपार्जन कर जीवन-निर्वाह करेंगे। आवश्यकताके अनुसार अर्थ स्वीकार करनेसे कल्याण होता है—आवश्यकतासे अधिक प्रहण करनेकी लालसासे आसक्ति होती है, जो भजन-को क्रमशः नष्ट कर देती है। आवश्यकतासे कम स्वीकार करना भी अहितकर होता है, क्योंकि ऐसा होने से अभाव उपस्थित होकर भजनको सर्व कर देता है। इसलिये जब तक निरपेक्ष होनेका अधिकार प्राप्त न हो जाय, तब तक जीवननिर्वाहापयोगी अर्थादि स्वीकार करते हुए शुद्ध भक्तिका अनुशीलन करना चाहिए।

विजय—(६) 'हरिवासरका सम्मान कैसा होता है?'

बाबाजी—'शुद्धा एकादशीका त्याग करना चाहिए। महाद्वादशी उपस्थित होने पर एकादशी छोड़ कर द्वादशीका पालन करना चाहिए। पूर्व-दिन ब्रह्मचर्य, हरिवासरके दिन निरम्बु उपवास और रात्रि-जागरणके साथ निरन्तर भजन और उपवासके दूसरे दिन ब्रह्मचर्य और उपबुध्नत समय पर पारण करना—यही हरिवासरका सम्मान करना है। महाप्रसादका त्याग किये बिना निरम्बु ( बिना जल पीये ) उपवास नहीं होता। सामर्थ्यहीन अथवा शक्तिहीनकी अवस्थामें प्रति-

निधि या अनुकल्पकी व्यवस्था है—“नक्तं हविष्यान्नं” ( हरिभक्तिविलास १२/३६, धृत वायुपुराण ) वचनोंके द्वारा अनुकल्पकी विधि है।' (ख)

विजय—(१०) आँवला-पीपल आदि वृक्षोंको गौरव प्रदान करना कैसे होता है ?

बाबाजी—'आँवला, पीपल, तुलसी, गो, ब्राह्मण एवं वैष्णव—इनकी पूजा करनेसे, इनका ध्यान करनेसे तथा इनको नमस्कार करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट होते हैं—

अरवस्थ तुलसी-धात्री-गो-भूमि-सुर-वैष्णवाः ।

पूजिताः प्रणवा पशानाः चरवन्ति नृणामघम् ॥

[स्कन्द पुराण]

वैधीभक्तिका अधिकारी इस संसारमें रह कर जीवनयात्रा निर्वाहके लिये उपयोगी पीपल आदि द्वायादार वृक्ष, आँवला आदि फलयुक्त वृक्ष, तुलसी आदि भजनीय वृक्ष, गाय आदि उपकारी पशु, ब्राह्मण अर्थात् धर्म शिक्षक और समाज-रक्षक एवं भक्त-वैष्णव—इन सबका पूजन और ध्यान करनेके लिये एवं इनको प्रणाम करनेके लिये बाध्य है। इन कार्योंके द्वारा वे संसारको रक्षा करेंगे।

विजय—(११) कृष्ण-वह्निमुख व्यक्तियोंका संगत्याग के विषयमें विस्तारपूर्वक बतलाइए।'

बाबाजी—'भाव उदित होने पर भक्ति गाढ़ी होती है। जबतक भावका उदय न हो, तबतक भक्ति विरोधी सङ्घटा परित्याग करना आवश्यक है। 'सङ्घ'

[क] जिस मात्रा में भिवनोंका अनुष्ठान करनेसे आपको भक्तिका निर्वाह हो, धनवान् पुरुष उसी मात्रामें धनादि ग्रहण करेंगे। क्योंकि आवश्यकतासे अधिक या अल्प ग्रहण करनेसे परमार्थसे अष्ट होना पड़ता है।

(ख) प्रतिनिधि द्वारा उपवासकी विधि (हरिभक्तिविलास १२/३५)—

उपवासेष्वशक्तस्य आहितान्नेरथापि वा । पुत्रान् वा कारयेदन्वान् ब्राह्मणान् वापि कारयेत् ॥

अर्थात् सामिनक ब्राह्मण उपवास करनेमें असमर्थ होने पर पुत्रों द्वारा अथवा ब्राह्मणों द्वारा उपवासकरवायेंगे। हविष्यान्न आदि द्वारा उपवासकी विधि (ह. भ. वि. १२/३६ धृत वायुपुराण)—

नक्तं हविष्यान्नमोदनम्वा फलं तिलाः चारमथाम्बुनाज्यं । यत् पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रसस्तमशोत्तर-  
मुत्तरञ्च ॥ अर्थात् रातमें हविष्यान्न, अन्न छोड़कर दूसरे-दूसरे दूध, फल, तिल, दुग्ध, जल, घृत, पञ्चगव्य अथवा वायु—ये सब वस्तुएँ क्रमसे एकसे दूसरी श्रेष्ठ हैं। महाभारत उद्योग पर्वके अनुसार जल, मूल, फल, दुग्ध, घृत, ब्राह्मण कामना, गुरु-वचन तथा औषधि—इन आँटोंसे व्रत नष्ट नहीं होते—“अष्टै तान्य-व्रततानि आयो मूलं फलं पयः । हविर्ब्राह्मणकाम्य च गुरोर्वचनमौषधम् ॥”

शब्दसे आसक्तिका बोध होता है। अतः दूसरे लोगों के साथ जो निकटता होती है अथवा बातचीत होती है उसे 'सङ्ग' नहीं कहते हैं। सङ्ग तो तब होता है, जब उस निकटता अथवा बातचीतमें आसक्ति होती है। भगवत् विमुख लोगोंका सङ्ग नितांत वर्जनीय है। भावके उदय हो जाने पर वहिमुख सङ्गके प्रति कभी स्पृहा नहीं होती। वैधीभक्तिके अधिकारियोंको ऐसे सङ्गसे सर्वदा दूर रहना चाहिए। पेड़-बीधे जिस प्रकार दूषित वायुसे तथा अधिक गरमीके कारण नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार कृष्ण-विमुखतासे भक्तिलता भी सुख जाती है।

विजय—'कृष्ण-विमुख कौन हैं ?'

बाबाजी—'कृष्णभक्तिरहित विषयी ( भोगोंमें-आसक्त), स्त्रीसङ्गा, ( स्त्री-सङ्गमें आसक्त ), माया-वाद और नास्तिकता दोषोंसे फलुपित हृदयवाले एवं कर्मजड़—ये चार प्रकारके लोग कृष्ण-विमुख हैं। इन चार प्रकारके लोगोंका सङ्ग दूरसे त्याग करना चाहिए।

विजय—'(१२) अनाधिकारीको शिष्य न करना के विषयमें जाननेयोग्य विशेष बातें क्या हैं ?'

बाबाजी—'धनके लोभसे बहुत शिष्य करना एक प्रधान दोष है। अनेक शिष्य बनानेके लिये ऐसे-ऐसे व्यक्तियोंको भी शिष्य करना पड़ता है, जिनके हृदयमें श्रद्धाका भी अभाव होता है। अश्रद्धालुको शिष्य करनेसे अपराध होता है। श्रद्धालु पुरुषोंके अतिरिक्त दूसरे शिष्य होनेके योग्य नहीं हैं।'

विजय—'(१३) आडम्बरपूर्ण उद्यमों ( महोत्सव आदि ) का परित्यागका क्या तात्पर्य है ?'

बाबाजी—'संक्षेपमें जीवन-निर्वाह करते हुए भगवद्भजन करना चाहिये। विराट-विराट व्यापार आरम्भ करनेसे उनके प्रति ऐसी आसक्ति होती है कि भजनमें मन नहीं लगता।'

विजय—'(१४) नाना प्रकारके ग्रन्थोंका पठन-पाठन और व्याख्यावादका परित्यागका तात्पर्य क्या है ?'

बाबाजी—'शास्त्र—समुद्रके समान हैं। जिस विषयकी शिक्षा लेनी है, उस विषयके ग्रन्थोंका आशोपान्त विवेचनपूर्वक अध्ययन करना अच्छा है। अनेक ग्रन्थोंको थोड़ा-थोड़ा पढ़नेसे किसी भी विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। विशेषतः भक्ति-शास्त्रोंका यदि मन लगाकर सावधानीसे अध्ययन न किया जाय तो सम्बन्ध तत्त्व-सम्बन्धी बुद्धिका उदय नहीं होता। ध्यान रहे कि ग्रन्थोंका सरल अर्थ ही लिया जाय; अर्थवाद करनेसे विपरीत सिद्धान्त हो पड़ते हैं।'

विजय—'(१५) व्यवहारमें कृपणताका परित्याग किसे कहते हैं ?'

बाबाजी—'जीवन-यात्रा निर्वाहके लिये भोजन और आच्छादनके उपयोगी द्रव्योंका संग्रह आवश्यक है। द्रव्योंके न होने पर कष्ट होता है और मिलने पर भी नष्ट होने पर कष्ट होता है। इस प्रकार दुःखों के उपस्थित होने पर भक्तजन घबड़ायेंगे नहीं, बल्कि मन-ही-मन भगवान्का स्मरण करना चाहिये।'

विजय—'(१६) शोक आदिसे कैसे बचा जाय ?'

बाबाजी—'शोक, भय, क्रोध, लोभ और मत्सरतासे भरपूर हुए चित्तमें श्रीकृष्णका स्फुरण नहीं होता। बन्धु-बान्धवोंके विच्छेदसे तथा काम-नाश्योंमें बाधा पड़नेके कारण शोक-मोह आदि हो सकते हैं, परन्तु उन शोक, मोह आदिके अधीन होकर पड़ा रहना उचित नहीं। पुत्र-वियोग होने पर अवश्य ही शोक होगा, परन्तु हरि-चिन्तन द्वारा उस शोकको दूर करना आवश्यक है। इस प्रकार भगवान् के चरण-कमलोंमें चित्तको स्थिर रखनेका अभ्यास करना उचित है।'

विजय—'(१७) अन्यान्य देवताओंकी अयज्ञा नहीं करनी चाहिए—क्या इससे यह समझा जाय कि उन उन दूसरे देवताओंकी पूजा करनी चाहिये।'

बाबा—'कृष्णके प्रति अनन्याभक्ति होनेकी आवश्यकता है। श्रीकृष्ण समस्त देवताओंके मूल देवता हैं। किसी भी देवताको श्रीकृष्णसे स्वतन्त्र समक कर पूजन नहीं करना चाहिए; परन्तु दूसरे लोगों

को उन देवताओंकी पूजा करते देख कर उन देवताओं की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। समस्त देवताओंको श्रीकृष्णका सेवक समझकर उन्हें सम्मान देते हुए एकमात्र कृष्णका ही निरन्तर स्मरण करना चाहिए। जीवका अन्तःकरण जबतक निर्गुण नहीं हो जाता, तबतक वहाँ अनन्यभक्ति उदित नहीं होती। जिनका चित्त (अन्तःकरण) सत्त्व, रज और तम—त्रिगुण से आच्छादित है, वे अपने-अपनेमें प्रबल रहने वाले गुणोंके अनुसार उन-उन गुणोंवाले देवताओंकी पूजा किया करते हैं; उनके अधिकारके अनुसार ही उनकी वैसी निष्ठा होती है। इसलिये उनलोगोंके उपास्य देवताओंके सम्बन्धमें किसी प्रकारसे अनादर का भाव प्रकट नहीं करना चाहिए। उन देवताओंकी कृपासे क्रमोन्नति होते होते उन उपासकोंका चित्त कभी निर्गुण हो जायगा।

विजय—‘(१८) ‘प्राणीमात्रको उद्देग नहीं देना चाहिए’—के सम्बन्धमें बतलाइये।’

बाबाजी—‘जो प्राणी-मात्रके प्रति दयाका भाव रखते हैं, उन्हें किसी प्रकार भी तन-मन-वचनसे उद्देग नहीं देते, उनके प्रति श्रीकृष्ण शीघ्र ही सन्तुष्ट होते हैं। दया—वैष्णवोंका प्रधान धर्म है।’

विजय—‘(१९) ‘सेवापराध और नामापराधका वर्जन कैसे हो?’

बाबाजी—‘अर्चनके सम्बन्धमें सेवापराधका और साधारणतः भक्तिके सम्बन्धमें नामापराधका विशेष सावधानीसे वर्जन करना चाहिए। सवारीपर चढ़कर या पादुकाके साथ भगवानके मन्दिरमें प्रवेश आदि वहील प्रकारके सेवापराध हैं। साधु-निदा, गुरुदेवकी अवज्ञा आदि दस प्रकारके नामापराध हैं। इन दोनों प्रकारके अपराधोंका अवश्य-अवश्य वर्जन करना चाहिए।’

विजय—‘(२०) ‘भगवान् और भक्तिकी निन्दा

आदि मुनकर लह्य करना’—इत उपदेशके अनुसार क्या निन्दा करनेवालेसे उसी समय भगवा करानेकी विधि भी है?’

बाबाजी—‘जो लोग श्रीकृष्ण और वैष्णवोंकी निन्दा करते हैं, वे कृष्णविमुख हैं; ऐसे लोगोंका सङ्ग सर्व प्रकारसे छोड़ देना चाहिए।’

विजय—‘इन पूर्वोक्त २० अङ्गोंके साथ दूसरे अङ्गोंका क्या सम्बन्ध है?’

बाबाजी—इनके बाद वाले ४४ अङ्ग इन पूर्वोक्त २० अङ्गोंके ही अन्तर्भूत हैं। विस्तारपूर्वक समझानेके लिये इनको अलग-अलग अङ्गोंके रूपमें दिखलाया गया है। ‘(२१) वैष्णव चिह्न-धारण’से लेकर ‘(२०) कृष्णको प्रियवस्तु समर्पण’ तक २० अङ्ग अर्चन मार्गके अन्तर्भूत हैं :—

(२१) गलेमें त्रिकंठी तुलसीकी माला, और शरीरमें द्वादश तिलक धारण करनेका नाम वैष्णव चिह्न धारण करना है। साथक वैष्णव चिह्नोंको अवश्य धारण करेंगे।

(२२) ‘हर कृष्ण’ आदि नाम अथवा पंचतत्त्वोंके नाम आदि चन्दनके द्वारा अपने श्रेष्ठ अङ्गों पर धारण करनेका नाम हरिनामाक्षर धारण है।

(२३) त्वयोपयुक्त-सगन्ध-वासोऽङ्गार-चर्चिताः ।

उच्छिष्ट-भोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि ॥ (क)

भागवतके (११।६।४६) श्लोकमें निर्मात्य धारणकी विधि दी गयी है।

(२४) कृष्णके आगे नृत्य, (२५) दण्डवत्-प्रणाम, (२६) अभ्युत्थान अर्थात् श्रीविग्रहका आगमन होते देखकर उठ कर खड़ा होना, (२७) अतुङ्ग्या अर्थात् श्रीमूर्तिके पीछे पीछे चलना, (२८) कृष्णके मन्दिरमें जाना, (२९) परिक्रमा अर्थात् श्रीमूर्तिको दाहिने रख कर तीन बार प्रदक्षिण करना, (३०) अर्चन अर्थात् विभिन्न उपचारों द्वारा श्रीमूर्तिकी पूजा करना,—इन

(क) हमने आपकी धारण की हुई माला पहनी, आपके लगाये हुए चन्दन लगाये, आपके उतारे हुए वस्त्र पहने और आपके धारण किये हुए गहनोंसे अपने आपको सजाते रहे। हम आपकी जूठन खाने वाले सेवक हैं। इसलिये हम आपकी माया पर अवश्य ही विजय प्राप्त कर लेंगे।

कतिपय अङ्गोंकी पृथक् व्याख्याकी आवश्यकता नहीं है।

(३१) परिचर्या तु संशोपकषणादि-परिष्कया।

तथा प्रकीर्णकच्छत्रवादित्रार्थरुपासना ॥

( म. र. सि. १-२-६१ )

अर्थात् राजाकी तरह श्रीकृष्णकी सेवा करनेको परिचर्या कहते हैं। यह परिचर्या दो प्रकारकी होती है। जैसे—उपकरणोंको साफ सुथरा करना एवं चामर और बाणादि द्वारा सेवा या उपासना।

( ३२ ) गान, ( ३३ ) संकीर्तन, ( ३४ ) विज्ञप्ति अर्थात् दैन्यसूचक वाणी-प्रयोग, ( ३६ ) स्तव-पाठ, ( ३७ ) नैवेद्यका आस्वादन, ( ३८ ) चरणोदकका आस्वादन, ( ३९ ) धूप और माला आदिका सौरभ प्रहण करना, ( ४० ) भूमूर्त्तिका स्पर्श, ( ४१ ) श्रीमूर्त्तिका दर्शन करना, ( ४२ ) आरती उतारना, ( ४३ ) श्रीकृष्णके नाम, रूप,गुण और लीला-कथाओंका श्रवण, ( ४४ ) सर्वत्र कृष्ण-कृपाका अनुभव करना, ( ४५ ) स्मरण अर्थात् कृष्णके नाम-रूप-गुण और उनकी लीला-कथाओंका स्मरण, ( ४६ ) ध्यान—ये कतिपय अङ्ग बिलतुल ही स्पष्ट हैं। ( ४७ ) कर्मोंका अर्पण और किंकर होना—यह दो प्रकारका दास्य है, ( ४८ ) सख्य दो प्रकारका होता है—विश्वास और मित्रवृत्ति, ( ४९ ) 'आत्मनिवेदन'—शब्दका अर्थ यह है कि आत्म अर्थात् देहीकी 'अहंता' और देह-निष्ठ 'ममता'—इन दोनोंको कृष्णके प्रति अर्पण करना।

विजय—“देहीकी अहंता और देह-निष्ठ ममता—इन दोनोंको और भी स्पष्ट करनेकी कृपा करें।”

बाबाजी—“शरीरके भीतर जो जीव हैं, वह देही और 'अहं' कहलाता है। उसको अवलम्बन कर जो 'मैं' की बुद्धि होती है, उसीको देही-निष्ठ अहंता कहते हैं; देहमें जो 'मेरी' की बुद्धि होती है, उसे देह-निष्ठ ममता कहते हैं। इन 'मैं' और 'मेरी' दोनोंको श्रीकृष्णके प्रति अर्पण करना चाहिए। 'मैं' और 'मेरा' इस बुद्धिको छोड़ कर 'मैं' कृष्णका प्रसाद भोजन करने वाला कृष्णका दास हूँ, और यह शरीर

कृष्णकी सेवाके उपयोगी एक यंत्र है—इस बुद्धिसे शरीर-यात्राका निर्वाह करना ही आत्मनिवेदन है।”

विजय—‘प्रिय वस्तुओंका कृष्णके प्रति कैसे अर्पण करना चाहिए?’

बाबा—“( ५० ) संसारमें जो चीज अच्छी लगे, उसे कृष्ण-सम्बन्धी मान कर प्रहण करनेको प्रिय वस्तुओंको कृष्णके प्रति अर्पण करना है।’

विजय—‘( ५१ ) कृष्णके उद्देश्यसे अखिल चेष्टाएँ कैसे हों?’

बाबाजी—‘लौकिकी और वैदिकी समस्त प्रकारकी क्रियाओंको हरि-सेवाके अनुकूल करनेसे श्रीकृष्णके उद्देश्यसे अखिल चेष्टाओंका करना हो जाता है।’

विजय—‘( ५२ ) सब प्रकारसे शरणापत्ति प्रहण करना कैसे हो सकता है?’

बाबाजी—‘हे भगवान्, मैं तुम्हारा हूँ,—इस प्रकार मन और वाणीसे कहना और 'हे भगवान्, मैं तुम्हारी शरणमें हूँ'—ऐसी भावनाको 'शरणापत्ति' कहते हैं।’

विजय—‘( ५३ ) तुलसीकी सेवा कैसे की जाय?’

बाबाजी—‘तुलसीकी सेवा नौ प्रकारसे होती है—तुलसीका दर्शन, तुलसीका स्पर्श, तुलसीका ध्यान, तुलसीका कीर्तन, तुलसीको प्रणाम, तुलसीका महात्म्य सुनना, तुलसीका पौधा लगाना, तुलसीकी सेवा, और तुलसीका नित्य पूजन।’

विजय—‘( ५४ ) शास्त्रका सम्मान करना कैसे होता है?’

बाबाजी—‘भगवद्भक्ति-प्रतिपादक शास्त्र ही 'शास्त्र' हैं; उनमें श्रीमद्भागवत ही सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि ये सर्व-वेदान्त सार-स्वरूप हैं; इनके रसरूप अमृतका आस्वादन करने वालेको दूसरे किसी भी शास्त्रके प्रति रुचि नहीं होती।’

विजय—‘( ५५ ) कृष्ण जन्म-स्थान मथुराका माहात्म्य कैसा?’

बाबाजी—‘मथुराके सम्बन्धमें श्रवण, कीर्तन और स्मरण; यहाँ जानेकी इच्छा और दर्शन,

स्पर्शन, वहाँ वास करना, तथा उनकी सेवा—इन क्रियाओंसे अभिलाषा पूर्ण होती है। श्रीमायापुरके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार जानो।

विजय—‘(५६) वैष्णव-सेवाका तात्पर्य क्या है?’

बाबाजी—‘वैष्णव भगवानके वड़े प्रिय हैं। वैष्णवकी सेवा करनेसे भगवानके प्रति भक्ति होती है। शास्त्रमें ऐसा कहा गया है कि समस्त देवताओंकी आराधनासे विष्णुकी आराधना श्रेष्ठ है और विष्णुकी आराधनासे भी उनके सेवक वैष्णवोंकी पूजा श्रेष्ठ है।’

विजय—‘(५७) शक्तिके अनुसार महोत्सवका क्या तात्पर्य है?’

बाबाजी—‘भगवानके मन्दिर आदिमें अपनी शक्तिके अनुसार द्रव्यादि संप्रह कर भगवत्सेवा पूर्वक शुद्ध वैष्णवोंकी सेवाको महोत्सव कहते हैं—इससे श्रेष्ठ उत्सव संसारमें और कुछ भी नहीं है।’

विजय—‘(५८) कार्तिक महीनेका समादर क्या है?’

बाबाजी—‘कार्तिक मासका नाम उर्जा है। इस महीनेमें नियमित रूपसे श्रवण, कीर्तन आदि भक्तिके अङ्गोंके पालन द्वारा श्रीदामोदरकी सेवा करनेका नाम ‘उर्जादर’ अर्थात् उर्जाका आदर करना है।’

विजय—‘(५९) जन्मके दिन यात्रा-उत्सव पालन कैसे होता है?’

बाबाजी—‘भाद्रपदकी कृष्णष्टमी और फाल्गुन महीनेकी पूर्णिमाके दिन उत्सव करनेका नाम ‘श्रीजन्मयात्रा’ है। शरणागत जनोंको इनका अवश्य पालन करना चाहिये।’

विजय—‘(६०) अर्द्धपूर्वक श्रीमूर्तिकी परिचर्या कैसी होती है?’

बाबाजी—‘श्रीमूर्तिकी सेवा-पूजामें प्रीतिपूर्ण उत्साहका होना अत्यन्त आवश्यक होता है। जो लोग परम उत्साहसे श्रीमूर्तिकी सेवा पूजा करते हैं, कृष्ण उनको केवल मुक्तिरूप तुच्छ फल न देकर, भक्तिरूप महाफल तक दान करते हैं।

विजय—‘(६१) रत्निकजनोंके सङ्गमें भागवतका अर्थ किस प्रकार आस्वादन किया जा सकता है?’

बाबाजी—‘वेदरूप कल्पवृक्षका सुनिष्ठ रस ही श्रीमद्भागवत है। रस-विमुख व्यक्तियोंके संगमें श्रीमद्भागवतका रसास्वादन नहीं होता। उल्टे श्रवण होता है। जो श्रीभागवतके रसज्ञ अर्थात् शुद्धभक्तिके अधिकारी है—कृष्णके लीलारसके विषय हैं, उनके सङ्गमें श्रीमद्भागवतके श्लोकोंका रसास्वादन करना चाहिये। साधारण समाजोंमें श्रीमद्भागवतका पाठ करने या श्रवण करनेसे शुद्ध भक्तिका कार्य नहीं होता।’

विजय—‘(६२) स्वजातीयाशय-स्निग्ध भक्तजनोंका सङ्ग किसे कहते हैं?’

बाबाजी—‘सत्सङ्गका नाम कर अभक्तलोगोंका सङ्ग करनेसे भक्तिकी उन्नति नहीं होती। श्रीकृष्णकी अप्राकृत लीलामें सेवा प्राप्त करना ही भक्तजनोंको अभीष्ट होता है; ऐसी अभिलाषा जिनको है, उनको ‘भक्त’ कहा जा सकता है; जैसे भक्तोंमें अपनेसे श्रेष्ठ भक्तोंका संग करनेसे भक्तिकी उन्नति होती है। ऐसा नहीं होनेसे भक्तिकी उन्नति रुक जाती है और जिस श्रेणीके लोगोंका संग किया जाता है, उसी प्रकारका स्वभाव हो पड़ता है। हरिभक्ति-सुधोदय (८।५१) में संगके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा गया है—

अर्थात् जैसे, मणिको जिस रंगकी वस्तुके साथ रखा जाय, उस वस्तुके समान ही मणिकारङ्ग दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार जिस पुरुषका जैसा संग होता है, उसीके अनुरूप उसका स्वभाव हो जाता है। अतएव शुद्ध संतोंके संगसे शुद्ध संत हुआ जाता है। साधु सङ्ग (सत्सङ्ग) सब प्रकारसे कल्याणप्रद होता है। शास्त्रोंमें जो निःसंग होनेका परामर्श दिया गया है, उसका तात्पर्य साधुसंग करनेको कहा गया है।’

विजय—‘(६३) नाम संकीर्तन किसे कहते हैं?’

बाबाजी—‘नाम—अप्राकृत चैतन्यरस हैं, उनमें जड़-भावका तनिक भी गन्ध नहीं है। भक्तजीवकी सेवा-वृत्तिसे भक्ति-शोधित रसना पर श्रीनाम स्वयं स्फूर्ति लाभ करते हैं। नाम जड़ इन्द्रियोंके द्वारा

ग्रहण नहीं किये जा सकते । इस प्रकार निरन्तर स्वयं और दूसरोंके साथ मित कर नाम-संकीर्तन करना चाहिये

विजय—‘(६४) मधुरा अर्थात् जन्मस्थानमें वास करनेके सम्बन्धमें आपकी कृपामें हमलोग कुछ समझ गये हैं; अब इनका सार बतानेकी कृपा करें।’

बाबाजी—‘अन्तिम पाँच अङ्ग स्वश्रेष्ठ हैं । अपराधसे दूर रह कर इनसे थोड़ासा भी सम्बन्ध स्थापन करनेसे इनके अत्यन्त अद्भुत प्रभावसे भाव-अवस्थाका उदय होता है।’

विजय—‘इन साधनोंके सम्बन्धमें यदि और भी कुछ जानने योग्य हो, तो कृपया बतलावें।’

बाबाजी—‘भक्तिके इन अङ्गोंके कुछ आवान्तर फलोंका वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है । इन आवान्तर फलोंका वर्णन ब्राह्मण लोगोंमें भजनकी रुचि पैदा करनेके लिये है । इस समस्त अङ्गोंका मुख्यफल कृष्णारति को प्रकाश करना है । भक्तिके जानकारोंके समस्त कार्य भक्तिके अङ्गरूपमें होने चाहिये, कर्माङ्ग के रूपमें नहीं । ज्ञान और वैराग्यके द्वारा कभी-कभी किसीको भक्ति-मन्दिरमें प्रवेशाधिकारकी थोड़ी सी अनुकूलता प्राप्त होती है, तथापि ज्ञान और वैराग्य भक्तिके अङ्ग नहीं हैं । इसका कारण यह है कि ये चित्तको कठोर बना देते हैं, परन्तु भक्ति सुकुमार स्वभावकी होती है । भक्तिसे जो ज्ञान और वैराग्य अपने-आप उपस्थित होते हैं, वे ही स्वीकृत हैं; ज्ञान और वैराग्य भक्तिके कारण नहीं हो सकते, ज्ञान और वैराग्य जो दे नहीं सकते, भक्ति द्वारा वह सहज ही पाया जाता है । साधन-भक्ति हरि भजनमें ऐसी रुचि उत्पन्न कराती है कि अत्यन्त कठिन विषय-राग अर्थात् विषयोंके प्रति रहनेवाली आसक्ति भी दूर हो जाती है ।

साधकके लिये युक्त-वैराग्य ही आवश्यक है, फल्गु-वैराग्य ( कपट-वैराग्य ) से सर्वादा दूर रहना

चाहिये । समस्त विषयोंको कृष्णसे सम्बन्धयुक्त कर अनासक्त भावसे आवश्यकतानुसार ( यथायोग्य ) उन विषयोंको ग्रहण करनेका नाम युक्त-वैराग्य है । हरि-सम्बन्धि वस्तुओंको सांसारिक मानकर मुक्तिके लोभसे उनका परित्याग करनेको फल्गु-वैराग्य कहते हैं । इसलिये आध्यात्मिक-ज्ञान और फल्गु-वैराग्य परित्याग करना चाहिए । घन और शिष्य आदिके उद्देश्यसे जो भक्ति प्रदर्शित होती है, वह शुद्ध भक्तिसे बहुत दूर होती है, इसलिये वैधी देखावटी-भक्ति भक्तिका अङ्ग नहीं है । विवेक आदि गुण भक्तिके अधिकारी व्यक्तियोंके गुण हैं, अतः वे भी भक्तिके अङ्ग नहीं हैं । यम, नियम, शौचाचार आदि कृष्णके प्रति उन्मुख व्यक्तियोंमें स्वयं उपस्थित होते हैं; इसलिये ये भी भक्तिके अङ्ग नहीं हैं । अन्तःशुद्धि, बहिःशुद्धि, तप और शम आदि गुण भी कृष्ण-भक्तोंको स्वयं आश्रय करते हैं, उनके लिये भक्तको प्रयत्न नहीं करना पड़ता है । भक्तिके जो अङ्ग बतलाये गये हैं, उनमें कई एक प्रधान अङ्ग हैं । उन प्रधान अङ्गोंमेंसे किसी एक अङ्गके अथवा अनेकाङ्गोंके साधनमें निष्ठ होनेसे सिद्धि प्राप्त होती है । मैंने वैधी-साधन भक्तिके सम्बन्धमें सारी बातें संक्षेपमें बतला दी हैं । अब तुम लोग हृदयमें भावनापूर्वक अच्छी तरहसे समझ लेना और शक्ति भर उनका आचरण करना ।’

ब्रजनाथ और विजय कुमार बाबाजीके उपदेशोंको सुनकर उनके चरणोंमें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर बोले—‘प्रभो ! आप कृपा कर उद्धार करें । हम लोग अभिमान रूप गह्वे में बुरी तरह फँसे हुए हैं।’

बाबाजीने कहा—‘कृष्ण अवश्य ही तुम लोगों पर कृपा करेंगे।’

रात अधिक होने पर मामा और भागिनेय घर लौटे ।

# श्रीनाम और श्रीनामभजनकी प्रणाली

## श्रीनाम भजनसे पूर्व

श्रीनाम भजन प्रारम्भ करनेके पहलेसे ही साधक-को कुछ बातें सर्वदा स्मरण रखनी चाहिये । पहली बात यह कि कृष्णका स्वरूप, कृष्णनामका स्वरूप, कृष्णसेवाका स्वरूप, कृष्णदासोंका स्वरूप और धामका स्वरूप मायासे परे नित्यमुक्त, पूर्ण, शुद्ध और चिन्मय है । सेवा-सम्बन्धी सब कुछ माया प्रकृतिमें अतीत—अप्राकृत है । कृष्णका पीठ स्थान, गृह, वन, दुख, यमुना, वृन्दावनके वृत्त, लता, गुल्म, पशु-पक्षी आदि सब कुछ चिन्मय है; अतएव अप्राकृत है । उन्हें इस बातको स्मरण रखना ही नहीं, अपितु दृढ़ विश्वास रखना चाहिये । दूसरी बात यह कि उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि ऐसा विश्वास जड़ीय अन्ध विश्वास नहीं है, बल्कि परम सत्य और नित्य है—यह विश्वास । जगतमें इस सत्यका स्वरूप यथार्थरूपमें प्रकाशित नहीं होता । शुद्धभक्तोंके हृदयमें स्वरूपतः नित्य रह सकता है । यहाँ साधनका फल है—स्वरूप-सिद्धि । अप्राकृत तत्त्वके स्वरूप-बोधको स्वरूप सिद्धि कहते हैं । जिनको स्वरूप-सिद्धि हो जाती है, उनको शीघ्र ही वस्तुसिद्धि हो जाती है । इस जगह उस परमसिद्ध वस्तुका आभास-मात्र साधनके द्वारा उदित होता है ।

## नामका स्वरूप

नाम चिन्मय वस्तु है । नाम जैसा ज्ञान, नाम जैसा व्रत, नाम जैसा ध्यान, नाम जैसा फल, नाम जैसा त्याग, नाम जैसा शम, नाम जैसा पुण्य, नाम

जैसी गति और कुछ भी नहीं है । नाम ही परमा मुक्ति है, नाम ही परमा गति है, नाम ही परमा शान्ति है, नाम ही परमा स्थिति है, नाम ही परमा भक्ति है, नाम ही परमा मति है, नाम ही परमा प्रीति है और नाम ही परमा स्मृति है, ऐसा दृढ़ निश्चय रखना चाहिये । नाम ही जीवका कारण है, जीवका प्रभु है और है—परमाराध्य वस्तु । नाम ही परम गुरु है ॥३॥

हम पहले ही कह चुके हैं कि अप्राकृत तत्त्वके स्वरूप बोधको ही स्वयं सिद्धि कहते हैं । इसीका नाम यथार्थ सम्बन्ध-ज्ञान है । सम्बन्ध-ज्ञान होनेपर प्रेमका ठीक-ठीक अनुशीलन होने लगता है । सम्बन्ध ज्ञानसे युक्त प्रेमके अनुशीलनको ही अभिधेय कहते हैं । प्रेमके अनुशीलनसे विशुद्ध कृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति होती है । यह कृष्ण-प्रेम ही प्रयोजन कहलाता है । प्रेम-रूप प्रयोजनकी प्राप्ति जीव मात्रके लिये चरम सिद्धिका विषय है । कृष्णका चिन्मय धाम, चिन्मय नाम, चिन्मय गुण और चिन्मयी लीला—ये सब प्रेमके अन्तर्गत प्रयोजन विशेष हैं । प्रसन्नोपनिषद् में नाम-भजनकी प्रणाली दी गयी है । श्रीकृष्ण नामके रूपमें जगतमें अवतीर्ण हैं । अचरात्मक होने पर भी नामके प्रभावसे अचरात्मक नाम भी अप्राकृत कृष्णायतार हैं । नाम और नामी अभेद हैं—इस विचारसे श्रीकृष्ण ही गोलोक-वृन्दावनसे नामके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं । इसलिये कृष्णनाम ही कृष्णका प्रथम परिचय है ।

ॐ न नामसदृशं ज्ञानं न नामसदृशं व्रतम् । न नामसदृशं ध्यानं न नामसदृशं फलम् ॥

न नामसदृशस्त्वभावो न नामसदृशः समः । न नामसदृशं पुण्यं न नामसदृशी गतिः ॥

नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा स्थितिः । नामैव परमाभक्तिर्नामैव परमा मतिः ॥

नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः । नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च ॥

नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः ॥ (आदि पुराण)

कृष्ण-प्राप्तिका संकल्प कर धीव कृष्णनाम प्रहरण करेंगे। कलियुगमें नामके बिना भवसागरसे पार उतर कर भगवत्प्राप्तिका कोई दूसरा पथ नहीं है। शास्त्रोंमें भगवन्नाम संकीर्तनकी अनन्त महिमा बतलायी गयी है। अब स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि भगवान्के किस नामका संकीर्तन शास्त्रोंमें अभीष्ट है? किस नामका संकीर्तन सर्वश्रेष्ठ फलदायक है? इसका उत्तर शास्त्रमें जगह-जगह दिया गया है—शंका सा निरपेक्ष और सरल चित्तसे विचार करने पर उक्त प्रश्नका उत्तर पाना मुश्किल नहीं। इस प्रश्नका उत्तर हमारे पूर्व-पूर्वके महाजनोंके चरित्रका अध्यलोकन करनेसे भी मिल सकता है। अग्निपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, कलि-सन्तग उपनिषद्, राधातंत्र, ब्रह्मयामल, अनन्त-सहिता आदि शास्त्रोंमें बत्तीस अक्षरोंसे युक्त सोलह नामवाले नाम मंत्रको ही कलियुगका महामंत्र कहा गया है। संकीर्तन-प्रवर्तक स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके पार्षदोंने, आधुनिक और प्राचीन सभी महाजनों और संत-महात्माओंने इसी बत्तीस अक्षरोंसे युक्त सोलह नामवाले महामंत्रका स्वयं कीर्तन किये हैं और यही नाम कीर्तन करनेका उपदेश दिये हैं। जैसे—

अग्नि पुराणमें—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

रत्नवि देवतावापि ते कृतार्थो न संशयः ॥

ब्रह्माण्ड पुराण में—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

ये रत्नवि हीदं नाम सर्वपापं तरन्ति ते ॥

ज्ञानामृतसारमें—

शिष्यस्योद्दुःखस्यस्य हरेर्नामानि षोडश ।

संश्राव्यैव ततो यन्नाममंत्रं त्रैलोक्यमङ्गलम् ॥

ब्रह्मयामलमें—

हरिं बिना नास्ति किञ्चित् पापनिस्तारकं क्वचि ।

सस्मादलोकोद्धारणार्थं हरिनाम प्रकाशयेत् ॥

सर्वत्र मुष्यते लोको महापापात् कलौ युगे ।

हरे कृष्णपदद्वन्द्वं कृष्णेति च पदद्वयम् ॥

तथा हरेपदद्वन्द्वं हरे राम इति द्वयम् ।

तदन्ते च महादेवि ! राम राम द्वयं वदेत् ॥

हरे हरे ततो ब्रह्मात् हरिनाम समुद्धरेत् ।

महामंत्रञ्च कृष्णस्य सर्वपापप्रणाशकमिति ॥

राधातंत्रमें—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

द्वात्रिंशद्दशरावयेव कलौ नामानि सर्वदम् ।

सर्वशक्तिमयं मंत्रं हरिनामनः तपोधन ॥

अनन्तसंहितामें—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

षोडशीतानि नामानि द्वात्रिंशद्दशकानि हि ।

कलौ युगे महामंत्रो सम्मतो जीवितारणो ॥

श्रीचैतन्य भागवतमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका लोगोंके प्रति उपदेश—

आपने समारे प्रभु करेन उपदेश ।

कृष्णनाम महामंत्र खुनह विशेष ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

प्रभु कहे कहिजाम एह महामंत्र ।

इहा गिवा जप सबे करिषा निर्बन्ध ॥

अस्तु यह निर्विवाद और सर्वमान्य है कि “हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।” कलियुगका महामंत्र है और शास्त्रोंमें तथा महाजनों द्वारा इसी मंत्रके कीर्तन और जप करनेका उपदेश दिया गया है।

कुछ लोग इस महामंत्रकी दूसरी पंक्तिको पहली पंक्तिके रूपमें रखकर ‘हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे’—महामंत्रका प्रचार करते हैं। ये लोग बैकटेश्वर प्रेस, बम्बईमें छपे हुए कलिसन्तरणोपनिषद्का प्रमाण देते हैं। परन्तु उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणोंको देखनेसे ऐसा स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि बैकटेश्वर प्रेससे प्रकाशित कलिसन्तरण-उपनिषद्की प्रत्तिमें ऐसा भूलसे छपा

है। ध्यान देनेकी बात है कि कलिस्मृतरणोपनिषद्की दूसरी-दूसरी प्रतियोंमें 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।' ही देखा जाता है।

दूसरी बात यह है चारों युगोंके तारक-ब्रह्मनामों का विवेचन करने पर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।' - यही पाठ शास्त्र और युक्ति-संगत प्रमाणित होता है। जैसे-सत्ययुगका तारकब्रह्म नाम है—

नारायण परावेदा नारायणपराचराः।

नारायणपरा मुक्तिनारायणपरा गतिः ॥

द्वारका तारकब्रह्म नाम है—

हरे गुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द शौरे।

यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष ॥

और त्रेतायुगका तारकब्रह्म नाम है—

राम नारायणानन्द मुकुन्द मधुसूदन।

कृष्ण केशव कंभारे हरे वैकुण्ठ वामन ॥

इन तीनों युगोंके तारक ब्रह्मनामोंका विचार करने से हम देख पाते हैं कि पहले युगमें अर्थात् सत्ययुग में भगवानके 'नारायण' नामोंका उल्लेख है, द्वार अर्थात् दूसरे युगमें कृष्ण और नारायण नाम आते हैं। तथा त्रेता अर्थात् तीसरे युगमें नारायण, कृष्ण और राम तीनोंके ही नाम हैं। इसलिये युग-क्रमके अनुसार विचार करने पर 'हरे कृष्ण' ही पहले होता है।

साधारणतः सत्य, द्वार, त्रेता और कलि—यही युगोंका क्रम है। परन्तु इस वर्तमान चतुर्थयुगमें हम उक्त क्रमका उलट फेर देखते हैं, इसका कारण यह है कि गौतम ऋषिके अभिशापसे अत्यन्त दुःखी अहिल्याके विशेष प्रार्थनासे उसके शीघ्रसे शीघ्र उद्धारके लिये ऋषिने साम्बना दी थी कि अहिल्याके शीघ्र उद्धारके लिये इस बार सत्य युगके बाद ही त्रेतायुग आरम्भ होगा और दूसरा युग द्वार त्रेता के बाद आयेगा। इसीलिये सत्ययुगके बाद द्वार न आकर त्रेतायुग हुआ और उसमें भगवान् श्रीराम-

चन्द्रजीने अहिल्याका उद्धार किया। अतएव युगकी दृष्टिसे 'हरे कृष्ण' ही पहले आना चाहिए।

अस्त, श्रीचैतन्य महाप्राने श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचैतन्य-भागवतमें इसी सोलह नाम बत्तीस अक्षर-मय नाम-माला ग्रहण करनेका उपदेश जीवोंको दिया है श्रीगोपाल गुड गोस्वामीने सोलह नामोंके अर्थ इस प्रकार किये हैं—

'हरि' नामका अर्थ—(१) 'हरि' शब्दके उच्चारणसे पापी व्यक्तिके सारे पाप दूर हो जाते हैं। जैसे अग्नि अनिच्छा होने पर भी स्पर्श मात्रसे जला डालती है, उसी प्रकार अनिच्छा रहते हुए भी 'हरि' शब्दके उच्चारणसे पापियोंके सारे पाप जल कर भस्म हो जाते हैं। हरिनाम चिदुचनानन्द विग्रहरूप भगवत्स्वकी साधकके हृदयमें प्रकाश कर अविद्या और उसके कार्यको ध्वंस कर देते हैं। इस पाप-हरण कार्यसे 'हरि' नाम हुआ है।

(२) चर-अचर समस्त प्राणियोंके त्रिविध तापोंको हरण या दूर करते हैं।

(३) अपनेअप्राकृत सदगुणावलिओंके भ्रवण और कीर्तन द्वारा जगत्के समस्त प्राणियोंके मनको हरण कर लेते हैं।

(४) अपने कोटिकन्दर्प लादण्य और माधुर्यके द्वारा समस्त प्राणियों और अवतारोंका मन हरण करते हैं।

उपरोक्त ४ कारणोंसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णही 'हरि' शब्द वाच्य हैं। उन श्रीहरिका ही सम्बोधनपद 'हरे' है।

(५) यथवा ब्रह्मसंहिताके अनुसार जो अपने स्वरूप-प्रेम-धातुसत्य द्वारा हरिका मन भी हरण कर लेता है, वे वृषभानुनन्दिनी ही 'हरा' शब्द वाच्य हैं। सम्बोधनमें उनको 'हरे' सम्बोधन किया जाता है।

'कृष्ण'-शब्दका आगमके अनुसार अर्थ—कृष्ण धातुमें 'ण' प्रत्ययके योगसे 'कृष्ण' शब्द बनता है, वह आकर्षक, आनन्दस्वरूप कृष्ण ही परब्रह्म है। कृष्ण शब्दका सम्बोधनमें 'कृष्ण' होता है।

‘राम’ शब्दका अर्थ—आगममें कहा गया है कि ‘रा’ शब्दका उच्चारण करनेसे हृदयसे समस्त पाप निकल जाते हैं और ‘म’ के उच्चारणसे (मुख बन्द होनेसे ‘म’ कपाट-स्वरूप होनेके कारण) वे पाप पुनः प्रवेश नहीं कर पाते। पुराणमें एक और भी अर्थ बतलाया गया है कि वैदग्धिसारसर्वस्व मूर्त्तिलीलाधि-देवता कृष्ण—जो श्रीमतीराधाके साथ नित्य रमण करते हैं—राम कहे जाते हैं। भजन-क्रियाके विचार-प्रसङ्गमें सोलह नामोंके अर्थ अलग-अलग दिखलाये जायेंगे।

### संख्यापूर्वक नाम-ग्रहण

इन ‘हरे कृष्ण’ नामावलीका कीर्त्तन और स्मरण संख्यापूर्वक करना चाहिये। संख्या रखनेके लिये तुलसीकी १०८ दानोंकी माला भजनमें विशेष रूपसे उपयोगी होती है। कीर्त्तन-स्मरणके समय नामके अर्थों द्वारा नामके अप्राकृत स्वरूपका निरन्तर अनुशीलन करते रहना चाहिए। निरन्तर अनुशीलनसे समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं और चित्त निर्मल हो जाता है। साधकका पहले-पहल शुद्धनाम उच्चारण नहीं होता। पहले-पहल नामके अक्षर निकलने पर भी वे या तो नामापराध होते हैं अथवा नामाभास। साधारणतः जो साधक सद्गुरुसे नाम ग्रहण कर कुछ भ्रष्टापूर्वक ‘नाम’ कीर्त्तन-स्मरण करते हैं उनका नामाभास होता है। नामाभासके साथ-साथ निरन्तर नामोच्चारण द्वारा चित्त पूर्ण रूपसे निर्मल होने पर वहाँ स्वभावतः अप्राकृत नाम उदित होते हैं।

### श्रीनामके सम्बन्धमें विशेष बातें

यों तो सभी लोग किसी न किसी रूपमें नाम लेते हैं, परन्तु नामोच्चारणका जैसा फल होना चाहिये, वैसा उन्हें प्राप्त नहीं होता। इसका कारण यह है कि वे ठीक-ठीक रूपमें नाम उच्चारण नहीं करते। नाम-भजनके साधकोंको यह जानना आवश्यक है कि नाम तीन प्रकारका होता है। ‘तीन प्रकारका नाम’ कहनेका तात्पर्य यह है कि यद्यपि नाम एक ही है, अर्थात् शुद्ध नाम ही नाम है तथापि साधारणतः

साधकोंकी अवस्थाके तारतम्यानुसार जो नाम उच्चरित होते हैं, वे तीन प्रकारके होते हैं—(१) शुद्ध नाम, (२) नामाभास और (३) नामापराध।

शुद्धनाम—जिस नाम उच्चारण या कीर्त्तनका उद्देश्य केवल कृष्ण प्रीति ही हो, जो नाम अपने किसी प्रकारके दुःख दूर करनेके लिये अथवा सांसारिक विषय सुख, स्वर्ग सुख या मुक्ति सुखकी प्राप्तिके उद्देश्यसे न लिया जाय, जो नाम निराकार निर्विशेष ब्रह्म सम्बन्धी शुष्कज्ञान और कृष्णसम्बन्ध-रहित सकाम आदि जड़ कर्मसे अनावृत हो अर्थात् सम्बन्ध शून्य हो तथा जो नाम प्रतिकूल भावोंको दूर रखकर अनुकूल प्रवृत्त के साथ ग्रहण किया जाता है—उसे शुद्धनाम कहते हैं। इसे संक्षेपमें इस प्रकार कह सकते हैं कि नामापराध और नामाभाससे रहित नाम ही शुद्धनाम है। शुद्धनाम ग्रहण करनेके लिये साधकको शिक्षाष्टकमें श्रीमन् महाप्रभु द्वारा दिये गये तीसरे उपदेशका आचरण करना नितान्त आवश्यक है। उक्त उपदेशोंमें चार बातें हैं—(१) नाम ग्रहणकारीको तृणसे भी अधिक दीन हीन होकर रहना चाहिए। (२) उन्हें वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होना चाहिए। वृक्षकी सहनशीलता ऐसी होती है कि सूखने पर भी जल नहीं माँगते, काटे जाने पर भी मना नहीं करते, अपना अङ्ग कटवा कर लोगोंका सब तरहसे अपने कटे हुए अङ्ग (लकड़ी) से उपकार करते हैं, पत्थर मारनेसे फल देते हैं, गरमीके दिनोंमें शीतल छाया प्रदान करते हैं, वर्षासे लोगोंकी रक्षा करते हैं। साधकको वृक्षोंसे सहिष्णुताकी शिक्षा लेनी चाहिए। (३) साधक कभी भी अपनी प्रशंसा या मानकी कामना न रखे, (४) और दूसरोंको सर्वदा मान देना चाहिए। ऐसा होकर नाम करनेसे शीघ्र ही नाम-भगवानकी कृपा प्राप्त होती है।

नामाभास—शुद्धनाम न होने पर जो नाम जैसा दीख पड़ता है, वह नामाभास होता है। वह नामाभास अवस्थाभेदसे कहीं नामाभास और कहीं नामापराध होता है। ‘आभास’—शब्दसे कान्ति, छाया और प्रतिबिम्बका बोध होता है। नामाभासका अर्थ

होता है—नामकी कान्ति या नामकी छाया अथवा नाम का प्रतिबिम्ब । जैसे सूर्य उदय होनेके पहले जो लालिमा दीख पड़ती है, उसी प्रकार शुद्धनाम रूपी सूर्य उदित होनेके पहले भ्रम-प्रमादादिसे युक्त जो अशुद्ध नाम उच्चरित होता है, उसे नामाभास कहते हैं । अर्थात् सरल अज्ञतासे युक्त अशुद्ध नाम—नामाभास कहलाता है । नामाभास चार प्रकारके होते हैं—(१) संकेत नामाभास—दूसरी वस्तुको लक्ष्य कर जो नाम लिया जाता है; (२) परिहास नामाभास—हंसी-दीङ्गामीमें-उपहासके साथ जो नाम उच्चारण किया जाता है; (३) स्तोभ नामाभास—अगौरवके साथ अर्थात् सम्मान बुद्धिसे रहित होकर जो नाम उच्चारण किया जाय और (४) हेला नामाभास—अनादरपूर्वक जो नाम लिया जाता है ।

नामाभाससे ही मुक्ति आदिकी प्राप्ति हो जाती है । निरन्तर नामभजनसे नामाभास दूर होने पर शुद्धनाम उदय होते हैं ।

नामापराध—नामापराध १० प्रकारके होते हैं । साधकोंको इन नामापराधोंका सर्वथा परित्याग करना चाहिए । दस प्रकारके नामापराध ये हैं—

(१) शुद्धभक्तजनोंकी निन्दा अथवा उनसे विद्वेष करना ।

(२) श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान हैं—समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, समस्त देव-देवियाँ उनके ही अधीन हैं—ऐसा न मानकर दूसरे-दूसरे देव-देवियों को स्वतन्त्र ईश्वर मानना ।

(३) साधु गुरुके प्रति अज्ञान ।

(४) भक्ति-शास्त्रोंकी अवहेला करना—निन्दा करना ।

(५) हरिनाम माहात्म्यको स्तुतिमात्र समझना ।

(६) हरिनामको कल्पित मानना—जैसे भावा-वादी कहते हैं कि भगवानका जब रूप ही नहीं, तब उनका नाम कहाँसे आया; भगवानका नाम कल्पित होता है, इत्यादि—ऐसा कहना या मानना ।

(७) नामके बल पर पाप करना—जब नाम करने

से सब पाप दूर हो जाते हैं, तब पाप भी करेंगे और नाम भी करेंगे—ऐसा करना अपराध है ।

(८) दूसरे-दूसरे शुभ कर्मोंसे नामकी समता करना ।

(९) अनाधिकारी व्यक्तियोंको हरिनाम देना ।

(१०) नाम-माहात्म्य सुनकर भी नामके प्रति अविश्वास और अरुचि तथा जड़ अहंकार अर्थात् शरीरमें 'मैं' दूसरी वस्तुओंमें 'मेरा' की बुद्धि रख कर हरिनाम करना ।

वद्यपि नामापराधोंसे युक्त होकर हरिनाम करनेसे सांसारिक भोग और जड़ीय अर्थादिकी प्राप्ति होती है तथापि जीवके चरम प्रयोजनकी प्राप्तिमें यह सबसे अधिक बाधक है । अतः साधक सावधानीपूर्वक नामापराधका वर्जन कर शुद्ध हरिनाम करनेका प्रयत्न करेंगे ।

### साधक और सिद्ध

नाम प्रहणकारी दो प्रकारके होते हैं—साधक और सिद्ध । इनमें साधक भी दो प्रकारके होते हैं—प्राथमिक साधक और प्रात्यहिक साधक । प्राथमिक साधक नामकी संख्याको बढ़ाते-बढ़ाते क्रमशः ऐसी अवस्थामें पहुँच जाते हैं, जिस अवस्थामें उनका निरन्तर नाम होने लगता है । निरन्तर नाम होने लगने पर वे प्रात्यहिक साधककी श्रेणीमें पहुँच जाते हैं । प्राथमिक साधकोंको नाम प्रहणमें रुचि नहीं होती । परन्तु तुलसीमाल द्वारा संख्यापूर्वक नामकी संख्या बढ़ाते-बढ़ाते निरन्तर नाम होने लगने पर अर्थात् प्रात्यहिक अवस्थामें पहुँचने पर नाम लेनेमें कुछ-कुछ रुचि उत्पन्न हो जाती है । इस अवस्थामें नामोच्चारण बन्द करना अच्छा नहीं लगता । ऐसी अवस्था उपस्थित होने पर आदरपूर्वक कुछ दिनों तक निरन्तर नाम करते-करते नाम में परम आस्थाद पैदा होता है और पाप, पापबीज ( पापकी वासना ) और इनकी जड़ अविद्या—सब कुछ स्वयं दूर हो जाता है । प्राथमिक अवस्थामें निरपराध होकर अर्थात्

ऊपर बतलाये गये १० प्रकारके अपराधोंसे बचकर नाम करनेकी चेष्टा और नाम भजनमें आप्रहृका होना नितांत आवश्यक है। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब साधक कुसंगसे दूर रहे और सत्संगमें सुशिक्षा करता रहे। प्राथमिक अवस्था बीत जाने पर तैल-धारावत निरन्तर नाम करते-करते स्वभावतः ही नाममें रुचि और जीवोंके प्रति दयाका भाव बढ़ने लगता है। इस विषयमें कर्म, ज्ञान या योग आदिकी सहायताकी कोई आवश्यकता नहीं होती। कुछ ही दिनोंमें धीरे-धीरे चित्तशुद्धि और अविद्यानाशका कार्य भी आरंभ हो जाता है। अविद्या जितनी ही अधिक नष्ट होती जाती है, युक्त वैराग्य और सम्बन्ध ज्ञान उपस्थित होकर उसी परिमाणमें चित्तको निर्मल करते जाते हैं। परिष्कृत-मण्डलीमें बार बार इस तथ्यका सफल परीक्षण हुआ है।

### सम्बन्ध ज्ञान

ऊपरमें सम्बन्ध-ज्ञानसे युक्त होकर नाम ग्रहणकी विधि दी गयी है। अतः सम्बन्ध-ज्ञान किसे कहते हैं, जानना आवश्यक है। संक्षेपमें सम्बन्ध ज्ञान यह है कि—परतत्त्व वस्तु क्या है? जीव तत्त्व क्या है? माया तत्त्व क्या है? और इनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है?—इसे जाननेका नाम सम्बन्ध-ज्ञान है। ब्रजेन्द्रनन्दन मुरलीवदन श्रीकृष्ण ही परतत्त्व वस्तु स्वयं-भगवान् हैं। भगवान्की त्रिविध शक्तियोंमेंसे जीवशक्ति या तटस्था शक्ति द्वारा प्रकाशित जीव विभिन्नांश तत्त्व है। विभिन्नांश तत्त्व जीव स्वरूपतः कृष्णदास होता है। भगवान् चिद् पदार्थ हैं, जीव भी चिद् पदार्थ है, अतः चिद् वस्तु होनेसे दोनोंको अभेद कहा जाता है; पुनः भगवान् पूर्ण चिद् वस्तु है, जीव अर्णु चिद् वस्तु है; भगवान् प्रभु हैं, जीव भगवान्का नित्यदास है; भगवान् मायाके पति हैं, जीव किसी अवस्थामें मायाके अधीन हो सकता है, क्योंकि वह तटस्थ-धर्मवशतः स्वरूपसे चिन्मय होने पर भी अर्णु या बुद्र होनेके कारण मायाके वशमें आने योग्य होता

है। इन दृष्टियोंसे भगवान् और जीवमें नित्य भेद है। परन्तु उक्त भेद और अभेद मानव-बुद्धि से अतीत होने से यह सर्वदेशीय वैदिक सिद्धान्त 'अचिन्त्यभेदाभेद' कहलाता है। कृष्ण-विमुख बद्ध-जीव माया निर्मित इस जड़ जगत्में पूर्ण सुकृतियोंके प्रभावसे सौभाग्यवश साधुसंग प्राप्त करता है। उक्त साधु संगमें वह भगवान्, जीव और मायाशक्तिका वास्तव तत्त्व-ज्ञान तथा उनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है—यह सम्बन्ध-ज्ञान प्राप्त होकर भगवद्भजन द्वारा पुनः कृष्ण-दास्य अर्थात् कृष्ण प्रेम-रूप अपने स्वरूप-धर्मको प्राप्त करता है।

### नामका स्वरूपार्थ और रोते-रोते उनके निकट प्रार्थना

नाम ग्रहण करनेके समय नामका स्वरूप-अर्थ आदरपूर्वक चिन्तन करते करते कृष्णके निकट रोते २ प्रार्थना करनी चाहिए। इससे कृष्णकी कृपासे क्रमशः भजनमें उन्नति होती है। ऐसा नहीं करनेसे कर्मी और ज्ञानियोंकी तरह साधन करते-करते अनेक जन्म बीत जाते हैं, फिर भी जैसा फल होना चाहिये, वैसा नहीं पाते। श्रीगोपाल गुरु गोस्वामीने प्राथमिक साधकों और सिद्धोंके उपयोगी नामके पृथक्-पृथक् दो प्रकारके स्वरूपार्थ लिखे हैं पहले प्राथमिक साधक अपने चित्तकी शुद्धिके लिये इस प्रकारसे प्रार्थना करते हुए नाम करेंगे—

१. हे हरे, मेरे चित्तको हरण कर मेरा संसार बन्धन खोल दीजिये।
२. हे कृष्ण, मेरे चित्तको अपनी ओर आकर्षित कीजिये।
३. हे हरे, अपनी माधुरीसे मेरे चित्तका हरण कीजिये।
४. हे कृष्ण, अपने भक्तजनोंद्वारा मुझे भजन सम्बन्धी ज्ञान प्रदान कर मेरे चित्तका शोधन कीजिये।
५. हे कृष्ण, अपने नाम रूप-गुण लीला-कथाओंमें मेरी निष्ठा पैदा करें।

६. हे कृष्ण, आपमें मेरी रुचि हो ।  
 ७. हे हरे, मुझे अपनी सेवाके योग्य बना लें ।  
 ८. हे हरे, अपनी सेवाकी आज्ञा दीजिये ।  
 ९. हे हरे, अपने प्रियजनोंके साथ मुझे भी अभीष्ट लीला-कथाओंका भवण कराइये ।  
 १०. हे राम, प्रिया सहित अपनी अभीष्ट लीला-कथाओंको सुनाइये ।  
 ११. हे हरे, अपने प्रियजनोंके साथ अपनी प्रिय लीला का मुझे दर्शन कराइये ।  
 १२. हे राम, प्रिया सहित अपनी अभीष्ट लीलाका दर्शन कराइये ।  
 १३. हे राम, अपने नाम, रूप, गुण और लीला-कथाओंके स्मरणमें मुझे नियुक्त कीजिये ।  
 १४. हे राम, मुझे अपनी सेवाकी योग्यता प्रदान कीजिये ।  
 १५. हे हरे, मुझे स्वीकार कर रमण कीजिये ।  
 १६. हे हरे, मेरे साथ रमण कीजिये ।  
 निष्किंचन रसिक भक्त ( सिद्ध ) जन 'हरे कृष्ण' नाम निम्नलिखित भावके साथ आस्वादन करेंगे—  
 हे हरे माधुर्यं गुणै, हरिले जे नेत्र मने,  
 मोहन मूरति दरसाई ।  
 हे कृष्ण आनन्द धाम, महा आकर्षक डाम,  
 तुया बिने देखिते ना पाई ॥  
 हे हरे धरम हरि गुरु भय आदि करि,  
 कुलेर धरम कैले दूर ।  
 हे कृष्ण वंशीर स्वरे. आकर्षिया आनि बले,  
 देह-मोह-स्मृति कैला दूर ॥  
 हे कृष्ण कषिता आमि, कञ्चुलि कर्षह तुमि,  
 ता देखि चमक मोहे लागे ।  
 हे कृष्ण विविध हले, उरज कर्षह बले,  
 स्थिर नहे अति अनुरागे ॥  
 हे हरे आमार हरि, लैया पुष्पतल्लोपरि,

विलासेर लालसे काकुति ।  
 हे हरे गोपत वख, हरियासे जन मात्र,  
 व्यक्त कर मनेर आकुति ॥  
 हे हरे वसन हर, ताहाते येमन कर,  
 अन्तरेर हार मत बाँधा ।  
 हे राम रमन अङ्ग, नाना बैदगधि रङ्ग,  
 प्रकाशि पूरह निज साधा ॥  
 हे हरे हरिते बलि, नाहि हेन कुतूहलि,  
 सवार से वाक्य ना राखिला ।  
 हे राम रमणरत, ताहे प्रकटिया कत,  
 कि रस आवेशे भासाइला ॥  
 हे राम रमणधेष्ट, मन रमणीय धेष्ट,  
 तुया सूखे आपनि ना जानि ।  
 हे राम रमण भागे, भाविते मरमे जागे,  
 से रस मूर्ति तनुखानि ॥  
 हे हरे हरण तोर, ताहार नाहिक ओर,  
 चेतन हरिया कर भोर ।  
 हे हरे आमार लक्ष्य, हर सिद्ध प्राय दृष्ट,  
 तोमा बिना केह नाहि मोर ॥  
 तुमि से आमार ज्ञान, तोमा बिना नाहि आन,  
 शरीके कल्प शत जाय ।  
 से तुमि अनत गिया, रह उदासीन हैया,  
 कह देखि कि करि उपाय ॥  
 उहे धनश्याम, केवल रसेर धान,  
 कैसे रहूँ करि मन सूरे ।  
 चैतन्य बेलय पाय, हेन अनुराग पाय,  
 तमे वन्धु मिलय अदूरे ॥३॥

### भारवही और सारग्राही

भजन करनेवालोंको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है अर्थात् उनमेंसे कोई-कोई भारवाही (केवल चोभ दोनेवाले) होते हैं और कोई-कोई सारग्राही (सार ग्रहण करनेवाले) । जो लोग मुक्ति

ऊपरोक्त पद बैंगला 'पदकल्पतरु' ग्रन्थके १८३ पर्वसे लिया गया है । भाव अतिशय गूढ़ और गंभीर है, साधारण अनर्थयुक्त साधकोंके लिये नहीं—सिद्धोंके लिये उपयोगी है, गुरुदेवसे पदोंका अर्थ र. भलेना चाहिये ।

और मुक्तिकी कामना रखते हैं एवं जड़ीय संसारमें आसक्त होते हैं, वे केवल धर्म-अर्थ काम-मोक्षकी चेष्टारूप भारको ही ढोया करते हैं। ये लोग सार वस्तु—प्रेम है, इसे नहीं जानते। अतएव भारवाही लोग अनेक प्रयत्न करके बावजूद भी भजनमें उन्नति नहीं कर पाते। सारवाहीजन प्रेमतत्त्वके प्रति लक्ष्य रख कर आसानीसे और थोड़े ही समयमें अभीष्ट स्थल पर पहुँच जाते हैं। इनको प्रेमारुरुक्षु कहते हैं। ये लोग अत्यन्त शीघ्र ही प्रेम-अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् सहज परमहंस हो जाते हैं। यदि कभी सत्सङ्गके प्रभावसे भारवाही व्यक्ति भी सार वस्तुके प्रति आदर करना सीख लें, तो वे भी शीघ्र ही प्रेमारुरुक्षु हो पड़ते हैं।

### नाम भजनमें श्रद्धा और साधुसंगकी आवश्यकता

अनेक जन्मोंकी भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके प्रभावसे भक्ति-मार्गमें श्रद्धा होती है। वही श्रद्धा भक्त-सङ्गमें रुचि प्रदान करती है। शुद्ध भक्तजनोंके सङ्गमें भजनादि करनेसे प्रेमोन्मुखी साधन-भक्ति उदित होती है। शुद्ध भक्तोंकी सेवा कर उनसे साधन-प्रणाली ग्रहण कर थोड़े ही समयमें प्रेमारुरुक्षु हुआ जा सकता है। मिश्रभक्त ( कर्म-ज्ञान मिश्राभक्तिका आचरण करनेवाले ) या भक्ताभासके निकट भजनकी शिक्षा लेनेसे प्रेम बहुत ही दूर रह जाता है। उनका सङ्ग करनेसे ऐकान्तिक अर्थात् अनन्य भक्त नहीं हुआ जा सकता है और अनर्थ प्रवल होकर शुद्ध-भक्तोंका आदर नहीं करने देते। हृदयमें कुटलता भर जाती है। इस अवस्थावाले साधकोंके प्रायः अनेक जन्म कनिष्ठाधिकारमें ही बीत जाते हैं। कनिष्ठ भक्तमें श्रद्धा होती है, परन्तु वह श्रद्धा बहुत ही कोमल और चंचल होती है, जो हल्केसे भौंकेमें ही इधर-उधर हो सकती है। उनकी चंचलता दूर करने तथा श्रद्धाको दृढ़ करनेके लिये श्रीगुरुदेव द्वारा अर्चनकी शिक्षा दी जाती है। बहुत दिनोंतक अर्चन करनेसे नामके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है।

### नामतत्त्वविद् गुरुका पदाश्रय

प्रारम्भसे ही जिन सौभाग्यशाली पुरुषोंकी कृष्ण-नाममें अनन्य श्रद्धा होती है, उनलोगोंके लिये भजन-प्रक्रिया प्रथक् होती है। वे लोग कृष्णकी कृपासे नामतत्त्वविद् गुरुका आश्रय करते हैं। श्रीमन्महा-प्रभुने गुरुके लक्षण इस प्रकार बतलाये हैं—

किवा विप्र किवा न्वासी शूद्र केने नय।

जेह कृष्ण-तत्त्ववेत्ता सेह गुरु हय ॥

अर्थात्, कृष्ण-तत्त्वको भलीभाँति जाननेवाला ही गुरु है; चाहे वह किसी भी जाति, कुल या आश्रमका क्यों न हो अर्थात् चाहे ब्राह्मण वर्णमें पैदा हुआ हो अथवा शूद्र कुलमें, चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, कृष्ण-तत्त्वका ज्ञाता होनेसे वही व्यक्ति सद्गुरु है। नाम-तत्त्वमें दीक्षागुरुकी आवश्यकता न रहने पर भी नाम-तत्त्वगुरु स्वतः सिद्ध हैं। नामके अक्षर ( नामाक्षर ) सर्वत्र पाये जा सकते हैं; परन्तु उसमें जो गूढ़ तत्त्व भरा पड़ा है, उसे केवल विशुद्ध भक्तगुरुकी कृपासे ही पाया जा सकता है। गुरुकी कृपासे ही नामाभास दूर होता है तथा नामापराधसे रक्षा होती है।

प्रेमारुरुक्षु मध्यमाधिकारी भक्त नाम संख्या बढ़ाते बढ़ाते रात और दिन मिला कर तीन लाख नाम करेंगे। नाममें इनता आनन्द होता है कि नाम लिये बिना रहा नहीं जाता। सोते समय संख्यानाम नहीं होता, इसलिये अन्तमें ( सोनेसे पहले ) असंख्य नाम करने लगते हैं। श्रीगोपालगुरुके बतलाये हुए अर्थकी भावनापूर्वक नाम करनेसे नर-स्वभावके समस्त प्रकारके अनर्थ दूर हो जाते हैं और परमानन्दमय नामके स्वरूपका साक्षात्कार होता है। नाम का स्वरूप स्पष्टरूपसे उदित होने पर कृष्णका चिन्मयरूप नामके स्वरूपके साथ एक होकर उदित होता है। उदित स्वरूपके साक्षात्कारके साथ-साथ नामका जितना शुद्धरूपसे भजन होता है, उसी परिमाणमें सत्त्व, रजः और तमोगुण विलुप्त होते जाते हैं और शुद्धसत्त्व अर्थात् अप्राकृत कृष्णगुण-समूह उदित

होते हैं। नाम, रूप और गुण—तीनों के ऐश्वर्यसे जितना ही अधिक विशुद्ध-भजन होता है, उतना ही अधिक रूपमें सहज समाधि योग द्वारा निर्मल चित्तमें कृष्णकी कृपासे कृष्णलीलाकी स्मृति होती है। जिह्वासे संख्यायुक्त या असंख्य नामका कीर्तन होता रहता है, मनकी आँखोंसे कृष्ण-रूपका दर्शन होता है, चित्त द्वारा कृष्णके गुणोंका चिन्तन होता रहता है तथा समाधिस्थ आत्माके ऊपर कृष्ण लीला प्रकाशित होती है। नाम भजनमें साधकोंकी पाँच प्रकारकी अवस्थाएँ परिलक्षित होती हैं—(१) श्रवण दशा, (२) वरण दशा, (३) स्मरण दशा, (४) आपन दशा और (५) प्रापन दशा।

(१) श्रवण दशा—सुयोग्य गुरुके निकट साधन और साध्य तत्त्व सुनकर जो सुखमय दशा होती है, उसे श्रवण दशा कहते हैं। नामावराध वर्जन करने तथा शुद्धनाम ग्रहण करनेकी प्रणाली आदि सब श्रवणदशामें ही प्राप्त होता है। उसीसे नाम निरन्तर होने लगता है, जिसे नैरन्तर्य-सिद्धि कहते हैं।

(२) वरण दशा—सत् शिष्य भद्गुरुके चरणोंमें

शरण लेता है। गुरु उसे अङ्गीकार कर नाम-प्रेम-प्रथित माला प्रदान करते हैं तथा उसमें शक्ति संचार करते हैं।

(३) स्मरण, ध्यान, धारणा, ध्रुवानुस्मृति और समाधि—ये पाँच नाम स्मरण करनेकी प्रक्रियाएँ हैं। नामस्मरण, रूपस्मरण, गुणधारण, लीलाकी ध्रुवानुस्मृति (निरन्तर स्मृति) और लीलामें प्रवेश कर कृष्णरस—प्रेममें मग्न होना रूप समाधि—ये सब क्रम होनेपर—

(४) आपन-दशा उपस्थिति होती है। स्मरण और आपन दशामें अष्टकाल कृष्णकी नित्य लीलाओंका साधन होता रहता है और उसमें प्रगाढ़ अभिनिवेश होने पर स्वरूप-सिद्धि होती है। स्वरूप-सिद्ध भक्तजन ही—सहज परमहंस हैं।

(५) प्रापन-दशा—पश्चात् कृष्णकी कृपासे शरीर पर सिद्ध देह द्वारा ब्रजलीलाका परिकर (परिवार या सेवक-सेविका होनेका नाम यस्तुसिद्धि है। यही नाम-भजनका चरम फल है।

## श्रीश्रीरूप गोस्वामी

जय जय रूप महारस सागर ।

दर्शन परशन, वचन रसायन, आनन्दहु के सागर ॥

अति गंभीर धीर करुणानय, प्रेम भक्तिके सागर ।

उज्ज्वल-प्रेम-महामणि प्रकटित, देश गौड़ बैरागर ॥

सद्गुण-मण्डित पण्डित-रंजन, वृंदावन निज नागर ।

कीरति-विमल यश सुनि तेहि माधो सतत रहज हिये जागर ॥

—( श्रीगौड़ीय गीतगुण्डसे )

# खड़गपुरमें श्रीश्रीव्यासपूजा और श्रीविग्रहों का नव मंदिरमें प्रवेश

पिछले वर्षकी तरह इस वर्ष भी श्रीगौर-विनोद-वाणी आश्रममें इसके अध्यक्ष त्रिदण्ड स्वामी श्री-मद्भक्तजीवन जनार्दन महाराजके अदम्य उरसाहसे श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रवर्तित धाराके अनुसार श्री श्री-व्यासपूजाका विराट अनुष्ठान हुआ है। साथ ही श्री श्री गुरुगौराङ्ग-राधा-नयनविहारीजीका नव निर्मित मंदिरमें प्रवेश-अनुष्ठान भी खूब समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। इस अनुष्ठानमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्राचार्य, परमहंस परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी समोष्ठी पधार कर इस महोत्सवका पौरोहित्य किये हैं। श्रीश्री व्यासपूजाके दूसरे दिन लगभग ५००० लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराज द्वारा अनुष्ठित व्यासपूजाका आदर्श प्रत्येक त्रिदण्ड संन्यासियोंके लिये प्रदूषण करने योग्य है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके इस संशोधित परिवर्द्धित व्यासपूजा-पद्धतिका प्रचार करना श्रील प्रभुपादको अभीष्ट था। इसीलिये उन्होंने उसका संग्रह कर प्रकाशन करवाया है। अतः सारस्वत धारामें स्नात वैष्णवोंके लिये प्रभुपाद द्वारा संग्रहीत पद्धतिके अनुसार ही व्यासपूजाका अनुष्ठान आवश्यक है—ऐसा करना ही श्रील प्रभुपादका मनोभीष्ट पूर्ण करना है।

—निजस्व संवाददाता

## श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और श्रीगौर-जयन्ती

पिछले वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अध्यक्ष परमहंस परिव्राजकाचार्य-वर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी नियामकतामें कलियुग पावनधाराका स्वयं भगवान श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी निखिल भुवन-मङ्गलमयी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें विगत ५ चैत्र से ११ चैत्र तक सात दिन व्यापी श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमा और श्रीश्रीगौर जन्मोत्सव अपूर्व धूम धामसे सम्पन्न हुआ है। इस विराट परिक्रमा और जन्मोत्सवमें लगभग २५०० यात्रियोंमें भाग लिया था। उल्लेख योग्य है कि इतनी विराट भीड़ होने पर भी श्रील आचार्य देवकी शुभदृष्टि और व्यवस्थापकोंकी सुव्यवस्थाके कारण किसी भी प्रकार-

की गड़बड़ी नहीं हुई है। ४ चैत्रको अधिवास महोत्सवके बाद ५ चैत्रको श्रीगोद्वीप, ६ चैत्रको मध्यद्वीप और ऋतुद्वीप, ७ चैत्रको जह्नुद्वीप और मोदद्रुम द्वीप, ८ चैत्रको रुद्रद्वीप तथा ९ चैत्रको श्रीअन्तर्द्वीप ( श्रीगौर जन्म स्थान श्रीधाम मायापुर आदि ) और सीमन्त द्वीपकी परिक्रमा हुई है। १० चैत्रको श्रीश्रीगौर-जन्मोत्सव और ११ चैत्रको साधारण महोत्सव खूब समारोहसे मनाये गये हैं। साधारण महोत्सवमें १० हजारसे भी अधिक लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया है। अगले अंकमें विस्तृत विवरण प्रकाशित होगा।

—प्रकाशक

# श्रीगौड़ीय-ब्रह्मवाच

[ वैशाख ]

- २४ विष्णु, ३ वैशाख, १७ अप्रैल, शुक्रवार—श्रीरामनवमी व्रत और उपवास । दूसरे दिन सबेरे ६-३० के पहले पारण ।
- २६ विष्णु, ५ वैशाख, १९ अप्रैल, रविवार—कामदा एकादशीका उपवास, दूसरे दिन सबेरे ६-२६ के पहले पारण ।
- ३० विष्णु, ९ वैशाख, २३ अप्रैल, बृहस्पतिवार—श्रीबलदेवजीकी रास यात्रा, श्रीकृष्णका वसन्त रास, श्रीवंशी वदनानन्द प्रभु और श्रीश्यामानन्द प्रभुका आविर्भाव ।
- ६ मधुसूदन, १५ वैशाख, २९ अप्रैल, बुधवार—श्रीअभिराम ठाकुरका तिरोभाव ।
- ९ मधुसूदन, १८ वैशाख, २ मई, शनिवार—श्रीवृंदावन दास ठाकुरका तिरोभाव ।
- १० मधुसूदन १९ वैशाख, ३ मई, रविवार—वरुथिनी एकादशीका उपवास । दूसरे दिन सबेरे ६-२४ के पहले पारण ।
- १७ मधुसूदन, २६ वैशाख, १० मई, रविवार—अक्षय तृतीया, पुरीमें श्रीजगन्नाथदेवकी चंदन यात्रा आरंभ ।

## ‘श्रीभागवत-पत्रिका’ के सम्बन्धमें विवरण

१. प्रकाशनका स्थान—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा
२. प्रकाशनकी अवधि—मासिक
३. मुद्रकका नाम—श्रीहेमेश्वर कुमार
४. प्रकाशकका नाम—श्रीरसराज ब्रजवासी
५. सम्पादकका नाम—त्रिदुखिस्वामी श्रीमद्-भक्तिवेदान्त नारायण महाराज
६. राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू ( भारतीय )
७. राष्ट्रगत सम्बन्ध—हिन्दू, सारस्वत गौड़ीय ब्राह्मण
८. पत्रिकाका स्वत्वाधिकारी—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तरफसे उसके प्रतिष्ठाता और नियामक परमहंस स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज । समिति अनरेजिस्टर्ड ।
- पता—साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा
- पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा
- पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

मैं, रसराज ब्रजवासी, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारीमें और विश्वासके अनुसार सत्य हैं ।

रसराज ब्रजवासी

प्रकाशक

१५ मार्च, १९५६